ान-यज्ञ

श्रीकृष्णदास जाजू

अ.भा. सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
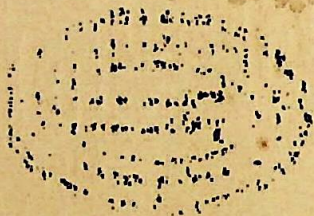
संपत्ति-दान-यज्ञ

श्रीकृष्णदास जाजू

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशकीय
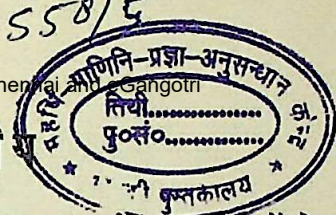
"संपत्ति-दान-यज्ञ" पुस्तिका का यह छठा संस्करण पाठकों के हाथों में है।

इसमें संपत्ति-दान-यज्ञ पर व्यावहारिक दृष्टि से और विशेषतः संपत्तिवानों के लिए तर्कयुक्त विवेचन किया गया है। सर्वोदय-सम्मेलनों की एतद्विषयक चर्चाओं तथा विभिन्न स्थानों पर सर्व-सेवा-संघ की बैठकों के इस सम्बन्धी निर्णयों का सार भी इसमें आ गया है। संपत्ति-दान के विचार और उसकी कल्पना का निरंतर विकास और अनुभवों के आधार पर परिष्कार होता रहा है। प्रस्तुत संस्करण में इसका अधिकतम विकसित रूप देखने को मिलेगा।

पुस्तिका के पहले विभाग में गांधीजी का लिखा हुआ सम्पत्ति-दान से सम्बद्ध एक लेख उद्धृत किया गया है, जो सम्पत्ति-दान के लिए आधारभूत है। दूसरे में पू० विनोबाजी के अब तक के इस सम्बन्ध के लेखों और प्रवचनों से महत्त्वपूर्ण अंश संकलित किये गये हैं। तीसरे विभाग का सम्पूर्ण विवेचन श्री जाजूजी का लिखा हुआ है। चौथे विभाग तथा परिशिष्टों में सम्पत्ति-दान की विनियोगसंबंधी चर्चा और व्यावहारिक बातों का दिग्दर्शन है, जिसमें समय-समय पर संशोधन और परिवर्द्धन होते रहे हैं। संपत्ति-दान संबंधी कुछ पावन प्रसंग भी जोड़ दिये गये हैं।

संपत्तिदान-आंदोलन के प्राण स्व० जाजूजी की जीवन-झाँकी भी प्रारंभ में जोड़ दी गयी है, जिससे उनके त्यागमय और पावन जीवन से प्रेरणा मिलती रहे।

अनुक्रम

साधु-चरित जाजूजी

श्रद्धेय जाजूजी का स्मरण करते ही उनकी सौम्य एवं सरल मूर्ति आँखों के सामने आ जाती है। अपने ही हाथ से कते सूत के श्वेत परिधान से आवृत, वृद्धावस्था से उनका कृशकाय, परन्तु आत्म-शक्ति-पुंजित शरीर गिरिराज हिमालय की भाँति दृढ़ता एवं कर्मठता का प्रतीक था। उनकी श्वेत श्मश्रु-युक्त मुखाकृति उषा-अरुणित हिम-शिखर के समान सर्वदा दिव्य आभा से आलोकित रहती थी। दुग्धवर्णा कृत्रिम दन्तावली से पूरित अर्धविकसित मुख से विहँसित स्नेह-स्निग्ध मन्द-मन्द मुसकान ज्योत्स्ना के समान सुखद तथा मनोहारी होती थी। उनका जीवन तत्त्व एवं व्यवहार का अनुपम समन्वय था। वे सत्य के अनन्य उपासक, न्याय-परायण, निःस्वार्थ देश-भक्त व परम नैष्ठिक मानव-सेवी थे। वे त्याग और तपःपूत जीवन के उत्कृष्ट उदाहरण थे। सत्य-संशोधित न्याय की पगडंडियों पर धर्म-भावना-प्रेरित मानव-सेवा का पाथेय लिये वे जीवन-यात्रा में अग्रसर होते गये और अन्त में पूज्य विनोबाजी के शब्दों में 'ईश्वरमय' हो गये।

जन्म और लालन-पालन

ऐसे साधुमना जाजूजी का जन्म ७४ वर्ष पूर्व, २६ अगस्त सन् १८८२ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा विक्रम संवत् १९३९ को अकासर (बीकानेर) ग्राम के बीकानेरी माहेश्वरी परिवार में हुआ था; किन्तु इनका लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा आर्वी, जिला वर्धा में हुई थी।

श्री जाजूजी के दादा श्री जगमणदासजी के दो बेटे थे—श्री ईश्वरदास और श्री मूलचन्द। घर में पंसारी की दूकान चलती थी। काम-धन्धे की दृष्टि से श्री ईश्वरदास नागपुर चले गये और कुछ समय बाद आर्वी (वर्धा) में आकर बस गये।

पिता की उदारता

मूलचन्दजी उदार वृत्ति के गृहस्थ थे। अकाल के दिनों में एक बार हरिद्वार जानेवाले साधुओं को, अन्यत्र भोजन की व्यवस्था न होते देख अपनी दूकान का सारा सामान—आटा, दाल आदि उठाकर दे डाला। जब अधिक दिन तक काम

चलना कठिन हो गया, तो आप भी अपने बड़े भाई के पास आर्वी आकर रहने लगे।

दोनों भाइयों में जब बँटवारे की बात चली, तो बड़े भाई ने अच्छी असामियाँ अपनी ओर खींचने की चेष्टा की। इसका विरोध करने पर वे बोले कि "मैं ही तो यहाँ पहले आया, मैंने ही ज्यादा मेहनत की, ज्यादा कमाई की, तो मैं ही क्यों घाटे में रहूँ?" यह सुनकर मूलचन्दजी का हृदय भर आया। वे बोले, "यह सब आपका ही पुण्यप्रताप है। आप ही सब लें। मुझे कुछ न चाहिए।" और वे बिना कुछ लिये ही अलग हो गये। इसके बाद मूलचन्दजी ने एक मालगुजार की नौकरी कर ली और किराये के मकान में रहकर अपना जीवन बिताने लगे। ऐसे थे हमारे साधुमना जाजूजी के पिताश्री!

श्री जाजूजी चार भाई थे। श्री नथमलजी, भीकमचन्दजी, श्रीकृष्णदासजी और मथुरादासजी। श्री मथुरादासजी अल्पावस्था में इस लोक से प्रस्थान कर गये। इनके पिताश्री का स्वर्गवास भी इनकी चार वर्ष की अवस्था में हो गया था। परिवार के भरण-पोषण का सारा भार दोनों ज्येष्ठ भाइयों पर था! परन्तु श्रीभीकमचन्द भी अपने सबसे बड़े भाई का अधिक दिनों तक हाथ नहीं बँटा सके और बड़े भाई को अकेला छोड़कर इस संसार से बिदा हो गये। इस प्रकार परिवार में ये दो भाई ही रह गये। श्री जाजूजी का लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा का कार्य सबसे बड़े भाई श्री नथमलजी ने अत्यन्त स्नेह और ममतापूर्वक किया। उनकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी कि श्रीकृष्णदास खूब विद्याभ्यास करे और वकालत पास कर बैरिस्टर बने। जाजूजी ने वकालत पास कर अपने ज्येष्ठ भ्राता की यह अभिलाषा पूरी की।

माँ का स्नेह

जाजूजी के जीवन-निर्माण में उनकी स्नेहमयी माताजी का सर्वोपरि हाथ था। ज्येष्ठ भाई ने साधन जुटाये और माताजी ने चतुर चित्रकार की भाँति सुसंस्कारों के रंग उनके जीवन-वृत्त में भरे। जाजूजी सौन्दर्य एवं स्वभाव में अपनी माँ के प्रतिनिधि थे। वह इन पर अगाध स्नेह रखती थी। वह बड़े यत्न से जाजूजी की सारी व्यवस्था करती, स्वयं खाना खिलाती और जब ये अपने मकान के सबसे ऊँचे कमरे में स्वाध्याय के लिए बैठते, तो मुहल्ले में आस-पास किसीको शोर-

गुल नहीं करने देती थी। वह सबसे कह देती थी कि "भायो भणीजे" इसलिए सबको शान्त रहना है। माताजी को जाजूजी से बड़ी आशाएँ थीं। वह अक्सर कहा करती थीं कि "म्हारो सिरीकिशन बाप-दादा रो नाम अमर करसी।" जाजूजी ने अपनी माँ की इस भविष्य-वाणी को सार्थक सिद्ध किया।

जाजूजी की भी अपनी माँ पर बड़ी श्रद्धा थी। माँ की आज्ञा की उन्होंने कभी भी अवज्ञा नहीं की। वे बचपन से माँ के दिल को दुखाना पाप और उनकी आज्ञा मानना पुण्य समझते थे। यही कारण था कि वे अपनी बाल्यावस्था ही से सादगीपूर्ण एवं कर्तव्यपरायण जीवन के अभ्यासी हो गये। माँ के स्नेह-वश भी बचपन में कभी झूठ नहीं बोले, बल्कि सदा सत्य एवं स्पष्ट वक्ता ही रहे। इसी कारण परिवार में इनका बड़ा सम्मान था।

शिक्षण

जाजूजी बाल्यकाल ही से कुशाग्रबुद्धि थे। आपका विद्यार्थी-काल बहुत गौरवपूर्ण रहा। आपकी बुद्धिमत्ता की धाक शिक्षण-काल ही से उनका परिवार, सहपाठी एवं शिक्षक गण मानते थे। उन्होंने १६०२ और १६०४ में क्रमशः बी० ए० व बी० एल० की परीक्षा कलकत्ता युनिवर्सिटी से सर्वप्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इन्हें स्वर्ण-पदक से गौरवान्वित किया। जाजूजी प्राथमिक शाला से लेकर हाईस्कूल एवं कॉलेज तक अपने वर्ग में सर्वदा प्रथम रहते थे। जब कभी समारोहों व उत्सवों में पारितोषिक-वितरण होता था, तो आपके सहपाठी श्री अत्रे व श्री पाण्डे इत्यादि, जो वर्धा में आज प्रमुख वकील हैं, एवं आपके शिक्षक-गण पहले ही कह देते थे कि "पहिला इनाम तर जाजूचा नंतर आजू बाजू चा।"

जाजूजी का मिडिल तक का शिक्षण आर्वी ही में हुआ था। सन् १८६८ में नीलसिटी हाईस्कूल, नागपुर से मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास की और मॉरिस कॉलेज, नागपुर ही में आपका बी० ए०, बी० एल० तक का शिक्षण हुआ। कक्षाओं में जाजूजी की उपस्थिति शत-प्रतिशत रहती थी। आपकी उपस्थिति की नियमितता पर शिक्षक-गण भी आश्चर्य करते थे। घर पर भी आप पढ़ने-लिखने में ही व्यस्त रहते थे। संस्कृत और नीति-शास्त्र इनके प्रिय विषय थे। पौराणिक

एवं धार्मिक ग्रंथ भी पढ़ने की आपको प्रारंभ से ही रुचि थी। अपनी शिक्षा-क्रम की पुस्तकों के साथ-साथ सामान्य रुचि के विषयों की पुस्तकें पढ़ने का इतना शौक था कि कभी-कभी तो आपके पढ़ने के लिए स्कूल के पुस्तकालय में कोई नवीन पुस्तक शेष नहीं रह जाती थी। आपके अध्ययन की इस प्रकार तीव्र उत्कंठा को देखकर बड़े भाई श्री नथमलजी को एक पुस्तकालय खोलने की प्रेरणा हुई। उन्होंने आर्वी में एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना की, जो आज भी जाजूजी के विद्या-प्रेम का मूर्त प्रतीक बना हुआ है। आर्वी में आज यह पुस्तकालय सार्वजनिक प्रवृत्तियों का प्रमुख केन्द्र है और "लोकमान्य सार्वजनिक वाचनालय" के नाम से जनता की सेवा कर रहा है।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

जाजूजी का विवाह १९०१ में, लगभग १८ वर्ष की अवस्था में, आर्वी तहसील के नारा नामक देहात में बसे हुए पोकरण के प्रसिद्ध एवं संभ्रांत माहेश्वरी परिवार के श्री सेठ गोरधनदासजी टावरी की एकमात्र कन्या कस्तूरीबाई के साथ बड़ी सादगी से संपन्न हुआ।

वकालत

जाजूजी ने अपना शिक्षण समाप्त कर १९०५ में वर्धा में वकालत शुरू की। मारवाड़ी समाज में उस समय वकालत करना बड़ी बात मानी जाती थी। इसलिए जाजूजी स्वाभाविकतः अपने समाज में सम्मानित व्यक्ति माने जाने लगे। आपने १९०५ से १९२० तक बड़ी सफलता के साथ वकालत की। अपनी विचक्षण मेधावी एवं तर्क-शक्ति के कारण वे अल्पकाल ही में प्रथम कोटि के वकील माने जाने लगे। जाजूजी की यह ख्याति थी कि वे झूठे मुकद्मे कभी नहीं लेते थे। न्यायाधीशों पर आपके सत्यनिष्ठ स्वभाव की अपूर्व छाप थी। जिस केस में जाजूजी पैरवी के लिए खड़े होते थे, उसमें अवश्य जीत होती थी। लेकिन यह कार्य उन्होंने कभी भी व्यवसाय के तौर पर नहीं अपनाया। इससे पैसा कमाने का ध्येय आपने कभी नहीं रखा। बड़ा-से-बड़ा मुकदमा, यदि असत्य होता, तो पैसा कमाने का लोभ किये बिना उसे छोड़ देते और मुवक्किलों को निर्भीकता से उस मुकदमे के लिए मना कर दिया करते थे। धनोपार्जन की तृष्णा बिल्कुल न होने के कारण

आप झगड़ों को आपस में ही निपटा दिया करते थे। आपकी इस प्रामाणिकता की सर्वत्र ख्याति थी। आपका कानूनी ज्ञान बड़ा सूक्ष्म था। आप हर मुकदमे में गहराई तक जाकर उसकी सचाई का पता लगाते और तब बहस करते थे। फिर भी इन्हें वकालत का काम रुचिकर नहीं लगता था, यह इच्छा आपने कई बार अपने मित्रों के समक्ष प्रकट की थी। उनकी इस प्रामाणिकता, सत्य-निष्ठा और प्रखर कानूनी-बुद्धि से ही स्वर्गीय सेठ श्री जमनालालजी बजाज प्रभावित होकर उनकी ओर आकर्षित हुए थे।

वकालत के प्रति जाजूजी की विरक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उन्होंने देखा कि वकालत में शुद्ध नीतिमत्ता और सत्यनिष्ठा से काम नहीं चल सकता। सच्चे मामलों को सच्चा सिद्ध करने के लिए भी दाँवपेंच करने पड़ते हैं। जाजूजी को यह बातें खटक ही रही थीं कि सन् १९२० में नागपुर-कांग्रेस के निर्णयानुसार सारे देश में जब असहयोग आन्दोलन की धूम मची और कांग्रेस ने जब वकीलों को वकालत, विद्यार्थियों तथा शिक्षकों से स्कूल-कॉलेज छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए अपील की, उस समय जाजूजी ने इस आह्वान पर वकालत छोड़ दी। उसी समय से उन्होंने सादगीपूर्ण जीवन बिताने और आजीवन देश और समाज-सेवा करने का संकल्प ले लिया। इस मर्यादा को उन्होंने मृत्यु-पर्यन्त बड़ी कठोरता के साथ निभाया।

सादा और मितव्ययी जीवन

जाजूजी आरम्भ से ही सादगी-पसन्द थे। विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने कभी सूट नहीं पहना। जब उनकी वकालत अपनी चरम सीमा पर थी, तब भी उन्होंने कभी विदेशी पोशाक नहीं पहनी। अपनी पगड़ी वे महँगे स्वदेशी रंग में ही रँगाया करते थे। व्यय में भी आप अत्यन्त मितव्ययी थे। सार्वजनिक पैसे को व्यर्थ ही खर्च करना वे भयंकर अपराध मानते थे।

निधन के कुछ दिन पूर्व जब जयपुर के अस्पताल में आपका आपरेशन हुआ, तो आप पहले "डीलक्स" नामक विशेष कक्ष में रखे गये थे, तब आपने कहा कि मुझे यहाँ से उस कक्ष में ले जाया जाय, जहाँ साधारण कोटि के लोग रखे जाते हैं। मैं तो दरिद्रनारायण का उपासक हूँ। यह सेवकों के लिए उपयुक्त स्थान नहीं

है। मितव्ययता और त्याग का यह अद्वितीय उदाहरण सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए सदा प्रेरणा की वस्तु रहेगी।

समाज-सेवा

वकालत के कारण जाजूजी का परिचय अत्यन्त व्यापक हो गया था। वे कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्पर्क में आये, जिनमें प्रमुख स्वर्गीय सेठ श्री जमनालालजी बजाज थे, जिनको आपने समाज-सेवा की प्रेरणा दी और उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में खींच लाये। दोनों ने मिलकर अपना अधिक-से-अधिक समय समाज-सेवा में अर्पण किया। श्री बजाजजी के सहयोग से १९१० में आपने मारवाड़ी विद्यार्थी-गृह की स्थापना की। सन् १९१२ में मारवाड़ी हाईस्कूल की स्थापना की, जो आगे चलकर मारवाड़ी शिक्षा-मण्डल के रूप में परिणत हो गया, जिसके मातहत आज मध्यप्रदेश में तीन कामर्स कॉलेज चल रहे हैं। महिलाओं तथा बालिकाओं की शिक्षा के लिए वर्धा में महिला-आश्रम की स्थापना कराने में आपका बड़ा हाथ रहा है।

समाज-सुधार के काम में भी आपकी बड़ी रुचि थी। आपने जाति-भेद को मारवाड़ी विद्यार्थी-गृह की मारफत मिटाने का प्रयत्न किया। आपके समाज-सुधार-कार्य के परिणामस्वरूप माहेश्वरी युवक आगे चलकर सार्वजनिक क्षेत्र में आये और उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। आपने माहेश्वरी समाज में पर्दा-प्रथा, मृत्यु-भोज, बाल-विवाह, पंचायती दण्डों का बहुत विरोध किया और अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया। आपने अपनी पुत्री श्री अनसूया का श्रीराधाकृष्ण बजाज (अग्रवाल परिवार) के साथ विवाह कर अन्तर्जातीय-विवाह का उदाहरण रखा।

१९२२ में जाजूजी अ० भा० माहेश्वरी सभा के कलकत्ता-अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। आपके प्रभाव से माहेश्वरी सभा का कार्य प्राणवान् हो गया था। सन् १९२४ में कोलवार-प्रकरण को लेकर जो संघर्ष छिड़ा और उससे जो पारस्परिक वैमनस्य पैदा हो गया था, उसे आपने कुशलता से समाप्त किया एवं प्रतिक्रियावादियों की चालों को विफल कर दिया।

राष्ट्र-सेवा का व्रत

१६२० के पश्चात् जाजूजी ने अपना सारा जीवन राष्ट्र-सेवा में अर्पण कर दिया। वकालत छोड़ने के पश्चात् उनका सारा जीवन सार्वजनिक सेवा के लिए ही व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे आप कांग्रेस के विधायक कार्यों में रस लेने लगे। श्री जाजूजी पर लोकमान्य तिलक के विचारों का गहरा प्रभाव था। तिलक महाराज के बाद गांधीजी ने जब राष्ट्र के जीवन में प्रवेश किया, तो जाजूजी गांधीजी के विचारों की ओर आकर्षित हुए और उनके कार्यक्रमों में भाग लेने लगे। आपने नमक-सत्याग्रह, जंगल-सत्याग्रह, भारत छोड़ो-आन्दोलन इत्यादि सब प्रकार के आन्दोलनों में भाग लिया। कई बार जेल गये और अनेक प्रकार की यातनाएँ सहीं। विदेशी-सत्ता के प्रति उनके मन में तीव्र रोष था। इसलिए १६४२ के 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' के समय रचनात्मक कार्यों में डूबे रहने पर भी उनका मन विद्रोह करने लगा। आप उस समय इन कामों से अन्यमनस्क हो गये। जिस दिन पुलिस उन्हें पकड़कर ले गयी, उस दिन वे प्रसन्न-मुद्रा में दिखाई दिये थे।

खादी-जगत की सेवा

स्व० श्री जमनालालजी पर जाजूजी की व्यवहार-दक्षता, कार्य-क्षमता, अनुभवनिष्ठ बुद्धि एवं नीतियुक्त आचरण का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। इसलिए जाजूजी को जमनालालजी ने १६२७ में महाराष्ट्र-चर्खा-संघ का कार्य सौंपा। जाजूजी ने इस संघ के कार्य-संयोजन एवं संगठन में मौलिक व्यवस्था-शक्ति का परिचय दिया और सारे काम की व्यवस्था बड़ी योग्यता से की। आप सन् १६२७ से १६३८ तक इसके मंत्री रहे। जाजूजी को सारा देश खादी-सेवक के नाम ही से जानता है। खादी-कार्य की आपने एकनिष्ठा एवं अविभक्त भावना से सेवा की। खादी-काम की वैज्ञानिक अवस्था उनके जीवन की अमूल्य एवं सार्वजनिक देन है। जाजूजी का सदा प्रयत्न रहा कि इस प्रवृत्ति में व्यापारिकता की अपेक्षा सत्य का ही व्यवहार हो। आपने गांधीजी के आदर्शों के साथ खादी-काम का समन्वय बिठाया। आपने खादी-विचार का गहन चिन्तन कर खादी के कार्य को वैज्ञानिक स्तर पर ला रखा और खादी-काम से संबंध रखनेवाले सब खादी-कर्मियों

के जीवन-मान की तालिकाएँ निश्चित कीं। यहाँ यह बात विशेष स्मरणीय है कि रचनात्मक संस्थाओं में वैतनिक और अवैतनिक कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओं के प्रश्न को लेकर जो समस्याएँ खड़ी हो जाती थीं, उनका उन पर काफी असर पड़ा और वैतनिक कार्यकर्ताओं के मान के लिए तथा उनमें हीनता की भावना निर्माण न हो, इसलिए वे स्वयं भी चर्खा-संघ से निर्वाह-वेतन स्वरूप ३०) मासिक लेते रहे। खादी-काम के पीछे जिन विचारों की भूमिका है, उसका शास्त्र तैयार किया और उसका जीवन के साथ संबंध जोड़ा। आज आपकी यह विरासत खादी-जगत् के लिए मार्ग-दर्शिका का काम कर रही है। चर्खा-संघ का जो इतिहास आपने तैयार किया है, वह अमर कृति के रूप में सदा प्रसिद्ध रहेगा। खादी-जगत् को यह आपकी अमूल्य भेंट है। खादी-कार्य के प्रेरणा-स्रोत एवं कुशल मार्ग-दर्शक के रूप में वे सदैव याद किये जायँगे।

बापू से परिचय

महाराष्ट्र-चर्खा-संघ की सेवाओं के कारण ही महात्मा गांधी से आपका परिचय उत्तरोत्तर गहरा होता गया। पू० बापू आपकी सत्यनिष्ठा, कार्यकुशलता, निर्भीक परन्तु सरल वृत्ति व सातत्य भावना से बड़े प्रभावित हुए और धीरे-धीरे जाजूजी ने गांधीजी के हृदय में अपना अनन्य स्थान बना लिया। गांधीजी आपको "वाचडॉग" (प्रहरी) कहा करते थे। जाजूजी पर उनका इतना विश्वास था कि गांधीजी कितनी ही बार यह कहा करते थे कि जाजूजी से पूछ लेना, तो फिर मुझसे उस बारे में मत पूछना। पू० बापू जाजूजी के कारण विधायक प्रवृत्तियों के बारे में निश्चिन्त रहते थे। वर्धा की प्रवृत्तियों के संचालन एवं विकास-कार्य में वे बापू के प्रमुख सलाहकार थे। गांधीजी के मन में जाजूजी के प्रति बड़ा स्नेह और सम्मान था। बापू उनकी परिपक्व बुद्धि के बड़े प्रशंसक थे।

श्री जाजूजी चर्खा-संघ के सिवा कई अ० भा० रचनात्मक संस्थाओं एवं प्रवृत्तियों के सलाहकार, ट्रस्टी व कार्य-समिति के सदस्य रहे थे। अ० भा० ग्रामोद्योग-संघ, सर्व-सेवा-संघ, गांधी-स्मारक-निधि, कस्तूरबा स्मारक-ट्रस्ट, गांधी-सेवा-संघ, अ० भा० खादी ग्रामोद्योग बोर्ड इत्यादि संस्थाओं के किसी-न-किसी रूप में सभासद एवं मार्ग-दर्शक रहे। सन् १९३४ के दिसम्बर में अखिल भारत

ग्रामोद्योग-संघ की स्थापना हुई, तो आप एक साल उसके अध्यक्ष एवं १९४७ तक खजांची रहे। गांधी-सेवा-संघ गांधी-विचार के पुराने कार्यकर्ताओं की प्रमुख एवं प्रतिनिधि संस्था थी, उसके भी आप प्रमुख थे। इस प्रकार गांधी-विचार की प्रेरणा से संस्थापित अ० भा० स्तर की सब संस्थाओं के आप सक्रिय सदस्य रहे। सन् '४८ में विनोबाजी के साथ शरणार्थियों की सेवा में भी सहयोग दिया।

त्याग के स्पृहणीय उदाहरण

जाजूजी का जीवन त्याग और सेवा का जीवन था। लौकिक ख्याति और राजकीय पद-प्राप्ति की लिप्सा उनको छू भी नहीं गयी थी। उनके जीवन के कई ऐसे प्रसंग हैं, जो उनके त्याग एवं निर्लोभ-वृत्ति की दुहाई देते हैं। सन् १९३७ में जब मध्यप्रदेश में डा० खरे-काण्ड को लेकर कांग्रेस-सरकार में गत्यवरोध आ गया था, उस समय कांग्रेस की प्रतिष्ठा के लिए कांग्रेस हाई कमांड के मुख्य मंत्रीपद के लिए ऐसे योग्य एवं लोकप्रिय व्यक्ति की आवश्यकता हो गयी, जिसे दोनों पक्षवाले स्वीकार कर लें। उस समय कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक वर्धा में हुई थी, तब सबका ध्यान जाजूजी की ओर गया। जाजूजी को इस पद के लिए तैयार कर लेने का कार्य पू० बापू ने स्वयं अपने पर लिया। पू० गांधीजी, किशोरलाल भाई और जमनालालजी ने जाजूजी के समक्ष सारी स्थिति रखी और मुख्यमंत्री का पद सँभालने के लिए आग्रह किया। वह पहला अवसर था, जब कि उन्होंने बापूजी के आग्रह को भी दृढ़ता, परन्तु सरलता के साथ अस्वीकार कर दिया। आपके अनासक्त मानस को पू० बापूजी का आग्रह भी हिला न सका। जब आपसे पूछा गया कि आपने पू० बापूजी के आग्रह को अस्वीकार क्यों किया, तब उन्होंने बड़ी सरलता से उत्तर दिया कि सत्ता में असत्य, शोषण और अन्याय से समझौता करना पड़ता है, जिसे मेरे मानस की भूमिका मानने को तैयार नहीं है।

देश की स्वाधीनता के पश्चात्, प्रथम राष्ट्रीय सरकार के वित्त-मन्त्री पद के लिए स्वयं बापू ने जाजूजी का नाम प्रस्तावित किया था। वैसे वे पू० बापू को अपना गुरु, नेता और बुजुर्ग मानते थे; परन्तु ये दो ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ पर सार्वजनिक रूप से बापू की इच्छा को उन्होंने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर रच-

नात्मक कार्यों के लिए निःस्वार्थ एवं निर्लोभ-सेवा का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया।

सर्वोदय-विचार-प्रचार

पू० बापू के निर्वाण के पश्चात् श्री जाजूजी ने सर्वोदय-विचार के प्रचार एवं प्रसार के लिए सारे देश की यात्रा की। स्थान-स्थान पर कताई-मण्डलों का संगठन किया। उसके द्वारा वस्त्र-स्वावलम्बन की प्रेरणा दी। स्वाधीनता के पश्चात् कार्यकर्तागण चर्खा एवं कताई के महत्त्व को भुलाते जा रहे थे, उस समय आपने फिर कार्यकर्ताओं की श्रद्धा चर्खे व खादी पर जमायी। उस समय कताई-मण्डलों की स्थापना की धूम मच गयी और गांधी-विचार में निष्ठा रखनेवाले कार्यकर्ताओं को संगठित होने का एक आधार मिल गया। सारे देश में स्थान-स्थान पर शिविरों एवं सभाओं में सम्मिलित होकर कार्यकर्ताओं का, जो कि निराशा के वातावरण से किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे, मार्ग-दर्शन किया और कार्यों में उनकी निष्ठा को कायम रखा। इस समय आपने सर्वोदय-समाज-रचना के विचार स्पष्टता से कार्यकर्ताओं के समक्ष रखे।

भूदान में जीवन-समर्पण

सन् १९५१ में जब पू० विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन प्रारम्भ किया, तब से तो जाजूजी ने सारा जीवन इस नैतिक आन्दोलन के विकास के लिए ही समर्पण कर दिया। भूदान-आन्दोलन के विकास में उन्होंने अपना हृदय, भावना और बुद्धि, तीनों का उपयोग किया और ७३ वर्ष की उम्र में कड़ी सर्दी और गर्मी की चिन्ता न करते हुए विभिन्न प्रदेशों की यात्राएँ कीं। घन-घोर वर्षा भी आपके बढ़ते चरण न रोक सकी। आपको इन दिनों एक मिनट बैठना भी अखरता था। आपमें एक अजीब जोश और तत्परता इस आन्दोलन के लिए थी। आप इस शरीर का जितना उपयोग किया जा सके, उतना इस आन्दोलन के लिए कर लेना चाहते थे।

कानूनी दृष्टि से आन्दोलन के पक्ष में भूदान-एक्ट के अनुसार भूदान-बोर्डों के निर्माण में उनका सहयोग बड़ा उपयोगी रहा था। मध्यप्रदेश भूदान-बोर्ड के अध्यक्ष के नाते भूदान-यज्ञ-कानून बनाने में आपका बड़ा हाथ रहा। इस प्रकार देश में जहाँ-

जहाँ भी भूदान-एक्ट बना, उसमें उनके कानूनी-ज्ञान के अनुभव का लाभ मिला और उसे जहाँ तक हो सका, आन्दोलन के अनुकूल बनाने में आपका प्रयत्न रहा।

संपत्तिदान के प्रणेता

सम्पत्तिदान-आन्दोलन के तो वे प्रणेता ही थे। जब से यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तभी से आपका चिन्तन और लेखन मुख्यतः इसीके लिए चलता था। आप स्वतन्त्र रूप से इस बारे में सोचते थे और अपने मौलिक सुझाव बराबर रखते रहे थे। उन्होंने सम्पत्तिदान का एक शास्त्र ही तैयार कर दिया था। ज्यों-ज्यों उनका चिन्तन चलता गया, वे सम्पत्तिदान के प्रकार और विनियोग के बारे में व्यावहारिक परिवर्तन करते चले गये। बम्बई के पूँजीपतियों के समक्ष श्री जाजूजी ने सम्पत्तिदान का शास्त्र स्पष्टतापूर्वक रखा। श्री जाजूजी एवं जयप्रकाश बाबू, दोनों ने मिलकर बम्बई में सम्पत्तिदान की बुनियाद डाली। सम्पत्तिदान के कार्यों में अपनी शारीरिक अस्वस्थता जब कभी बाधक होती, तो वह आपको बड़ी खटकती थी।

जब भूदान-आन्दोलन में आपका अधिक समय लगने लगा, तो इसी कार्य में अपनी पूरी शक्ति और समय लगाने के हेतु आपने शनैः शनैः सारी संस्थाओं से अपना सम्बन्ध सिकोड़ लिया। जब देश में भूदान और सम्पत्तिदान का सन्देश लेकर निरन्तर घूमना आरम्भ किया, तब एकनिष्ठा से इसीकी सेवा करना ठीक समझा। व्यभिचारिणी भक्ति आपको पसन्द नहीं थी। इसलिए धीरे-धीरे अपने को संस्थाओं की जिम्मेवारी एवं सदस्यता से मुक्त कर लिया। गांधी-स्मारक-निधि व कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट इत्यादि संस्थाओं के ट्रस्टीपन तक से आपने निवृत्ति ले ली थी। भूदान-आन्दोलन में ही अपने को निमग्न कर उसके साथ एकरस हो गये।

व्यवहार-शुद्धि-आन्दोलन

युद्ध की समाप्ति और स्वाधीनता के पश्चात् देश में उत्तरोत्तर नैतिकता का ह्रास होता चला गया। चारों ओर काला बाजार, घूसखोरी, संग्रहवृत्ति और भ्रष्टाचार का बोलबाला था। सन् १९५१ में इसी नैतिक ह्रास के खिलाफ जन-मानस तैयार करने के लिए पू० नाथजी महाराज ने व्यवहार-शुद्धि का आन्दोलन प्रारम्भ किया था। स्व० किशोरलाल भाई ने इस प्रश्न को हरिजन पत्रों में बड़े जोर से उठाया। श्री नाथजी महाराज ने जाजूजी को इस आन्दोलन में सहयोग देने के लिए आमन्त्रित किया। इस आन्दोलन को जाजूजी ने वर्धा में संगठित

किया और व्यवहार-शुद्धि का सूक्ष्म विवेचन किया और व्यावहारिक पहलुओं पर 'व्यवहार-शुद्धि' नामक पुस्तिका तैयार की। जाजूजी ने इस आन्दोलन को व्यापक बनाने के लिए प्रतिज्ञापत्र तैयार किये। देश के सैकड़ों व्यक्ति जिनमें व्यापारी एवं उपभोक्ता सब लोग सम्मिलित हैं, इस आन्दोलन में शरीक हुए और प्रतिज्ञापत्र भरकर व्यवहार-शुद्धि के लिए संकल्प किये।

महाप्रयाण

अविराम गति से कार्य करते-करते उनका शरीर क्षीण होता चला गया। क्योंकि एक क्षण भी बेकार बैठना आपको अच्छा नहीं लगता था। अन्त तक वे दरिद्रनारायण की सेवा में संलग्न रहे। निधन के १५ वर्ष पूर्व से वे हार्निया की बीमारी से पीड़ित थे। किन्तु अपने संयमी जीवन के कारण उस पर उन्होंने काबू पा लिया था। परन्तु वृद्धावस्था की कमजोरी के कारण उनके दाहिनी ओर हार्निया की शिकायत हो गयी थी। वे कुशल सर्जन से आपरेशन करवाकर इस व्याधि से मुक्त हो, भूदान-आन्दोलन का काम पूर्ण मनोयोग से करना चाहते थे। जयपुर (राजस्थान) के चिकित्सक श्री डॉ० शर्मा की सेवा-भावना से वे प्रभावित थे। इसलिए जयपुर में आपरेशन करवाने का उन्होंने निश्चय किया। १३ अक्तूबर १९५५ को जयपुर में उनका हार्निया का आपरेशन सफलतापूर्वक हुआ। धीरे-धीरे आपके स्वास्थ्य में सुधार हो रहा था। परन्तु आपकी आत्मा अंदर ही अंदर इस पार्थिव शरीर के बंधन से मुक्त होने के लिए आकुल हो उठी थी। ता० २३ अक्तूबर को प्रातः डेढ़ बजे सहसा हृदय का दौरा हुआ। उन्हें उष्णता अनुभव हुई। उनके सुपुत्र श्री नारायणदास जाजू ने उन्हें पानी पिलाया। पानी पीने के पश्चात् सहसा उनकी हृदय-गति बन्द हो गयी और उनके प्राण सदा के लिए इस नश्वर शरीर को त्याग कर गये। राजस्थान की कर्म-भूमि ने अपनी कोख से दरिद्रनारायण की सेवा के लिए इस पुत्र-रत्न को जन्म दिया था, जो जीवनभर एक साहसी वीर की भाँति सेवा-क्षेत्र में डटा रहा और आखिरी दिनों में भी भूदान-आन्दोलन की मारफत उनकी सेवा करता रहा। अन्त में इसीका चिन्तन करते-करते प्राणों की आहुति दे दी और राजस्थान की वीर-भूमि ने अपने इस वीर-पुत्र को वापस अपने अंचल में समेट लिया। इस प्रकार जाजूजी ने एक कर्मयोगी की भाँति परम शांति के साथ मृत्यु का स्वागत किया।

जाजूजी का पुण्य-स्मरण

(विनोबा)

किशोरलाल भाई गये, तो उनके कुटुम्बी-जनों के लिए मैंने सन्देश भेजा था, जिसमें कहा था कि परमेश्वर ने उन्हें जर्जर-देह से छुड़ा लिया, इसके लिए हम ईश्वर के कृतज्ञ हैं। अब, तीन साल के बाद, जिन्हें विश्रान्ति का पूर्ण अधिकार था, उनका भी अधिकार भगवान् ने मान्य कर लिया, इसके लिए हम भगवान् के कृतज्ञ हैं। हमारी विलक्षण मानस-स्थिति है। इस तरह हमारे साथी जाते हैं, तो हमें बहुत बल मिलता है और जब वे जीवित होते हैं, तब तो बल मिलता ही है। जाजूजी के चले जाने की खबर जब मुझे मिली, तो उस समय भी और कुछ नहीं लगा। ईश्वर की सूचना ही मिली कि "पानी जोरों से वह रहा है। तू अपना काम जल्दी-से-जल्दी कर। फिर से सोच ले कि तू कौन है और तेरा रूप क्या है ? तू किस काम के लिए यहाँ आया है ? यह पहचान अगर तू इस जन्म में नहीं कर लेगा, तो तू बहुत खोयेगा।"

आप समझ लेंगे—इस पर से कि हमें इस काम के बारे में क्यों इतनी तीव्रता महसूस होती है। हम नहीं चाहते कि हमारा शरीर बैठा हुआ गिरे। होगा तो वही, जो ईश्वर चाहता होगा। हमारी इच्छा की कोई कीमत नहीं है। पर हम यही चाहते हैं कि यह शरीर घूमते-घूमते ही गिरे।

जाजूजी और किशोरलाल भाई

हम आपसे यह भी कहना चाहते हैं और ईश्वर साक्षी है कि बापू का वियोग भी हमें एक क्षण भी महसूस नहीं होता ! हम निरन्तर उन्हें अपने साथ ही पाते हैं। गलतियाँ तो पचासों कर लेते हैं, पर अजीब बात है कि उन गलतियों का पश्चात्ताप नहीं होता है। ये भी उसीको अर्पण होंगी, जो ऐसे नालायक से काम लेना चाहता है। उसकी मर्जी की बात है। इस पर

इतनी गलतियाँ होती हैं, हम यह जानते हैं, लेकिन गलतियों की कोई जिम्मेदारी हमें महसूस नहीं होती है।

भूदान-आंदोलन के साथ किशोरलाल भाई और जाजूजी, दोनों दैवयोग से पूरे एकरूप हो गये थे और अब अपना सारा कार्य-भार हम पर और आप पर छोड़कर वे चले गये।

हमने उन्हें पहचाना नहीं

जाजूजी का मेरा परिचय सन् १९२१ से था। मेरा पहले से ही एक विश्वास रहा है। शास्त्रों का मेरा जो अध्ययन हुआ, उसके भी पहले का वह विश्वास है और शास्त्रों के अध्ययन से वह विश्वास दृढ़ हुआ है कि जो सबसे श्रेष्ठ पुरुष दुनिया में हुए हैं, उनका पता दुनिया को नहीं है। अगर पता चला है, तो बहुत कम। और, जो पुरुष महान् विभूतियों के तौर पर दुनिया में प्रकट हो गये, वे अगर महान् थे, तो भी उतने महान् नहीं थे, जितने वे महान् थे, जिनका कि पता दुनिया को था तो बिलकुल नहीं लगा या बहुत कम लगा। मुझे लगता है कि ऐसे पुरुषों की कोटि में, श्रेणी में कहीं जाजूजी का स्थान है। उन्हें हमने पहचाना नहीं, हमारा यह बड़ा दुर्भाग्य था। उन्हें दुःख हुआ, ऐसा मैं सुनता हूँ। उनके उस दुःख से मेरी आँखों से आँसू ही आ गये कि उन्हें बड़ों के कमरे में रखा। उनका दुःख देखकर उस कमरे से उन्हें हटाना पड़ा।

"बहुतों में से एक"

महाकवि वर्ड्सवर्थ ने एक कविता लिखी है कि अपना स्मारक कैसे बनाया जाय? मरने के बाद लोगों का स्मारक बनता है, इसलिए उसने उसकी हिदायत दी है। कहा है कि "यह मेरा छोटा-सा गाँव है, जिसमें मेरा जन्म हुआ। यहाँ नजदीक में एक पहाड़ है, जहाँ पहले मैं घूमने जाता था। उस पर पत्थर पड़े हैं। कारीगर लोग उनमें से अच्छे-से-अच्छे पत्थर अपने काम के लिए ले जाते हैं। ऐसे बहुत-से पत्थर वहाँ से उठाये गये हैं। पर एक पत्थर वहाँ ऐसा पड़ा है, जिसका किसी कारीगर को आकर्षण नहीं है। तो यही पत्थर

मेरे स्मारक का माना जाय !" कवि लिखता है, "और उस पर यह लिखा जाय कि बहुतों में से एक !"

जिसे हम महत्त्वाकांक्षा कहते हैं, वह आज तो मनुष्यों की होती है। महत्त्व की आकांक्षा होना ही महत्त्व के भाव का लक्षण है।

वेदान्त में ओत-प्रोत

जाजूजी कोई महत्त्वाकांक्षी नहीं थे। लोगों को मालूम है कि एक विशेष मुश्किल प्रसंग में उनसे राज्य के मुख्य-मंत्री बनने के लिए आग्रह किया गया था और इससे समस्या हल होनेवाली थी; संकट में से कांग्रेस मुक्त होनेवाली थी। इसलिए बापू ने स्वयं आग्रह किया, दूसरों ने तो किया ही। तो भी जाजूजी ने कहा कि "अपना स्थान मैं जानता हूँ। वह मेरा स्थान नहीं है।"

हम ऐसे मनुष्य की भी कल्पना कर सकते हैं और करते भी हैं। ऐसे मनुष्य होने भी चाहिए, जो जनक महाराज की-सी अनासक्ति से बड़ी सत्ता का अधिकार हाथ में लें और जनता में काम करें। वह एक स्थान है। पर जाजूजी का मन तो दूसरे प्रकार का बना हुआ था। बहुत लोग नहीं जानते, लेकिन मुझे मालूम है कि हमेशा उनका चित्त वेदान्त में रहता था, लेकिन किसीको उसका भान कभी नहीं होता था। लड़कों से उन्होंने कहा कि "मेरी सेवा तो जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ हो जायगी। ये सब मेरे कुटुम्बी हैं और 'ये मेरे नहीं हैं', ऐसा भाव अब मुझमें नहीं रहा है।" यह सीधी-सी बात लगती है, पर यह एक परम भाग्य है। यह वह सौभाग्य है, जिसके लिए बड़े-बड़े भक्त और महात्मा लालायित रहते हैं। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, उनकी विशेष पहचान उन-उन लोगों को नहीं हो सकी, जिनकी सेवा उन्होंने जिन्दगीभर की। जैसे मीरा बहन कहती थीं, "अब है हमारी बारी।" अब हमें अपना काम करना है।

सम्पत्ति क्या है ? कागज है। वह नासिक में छपता है। यह मैं वेदान्त नहीं कह रहा हूँ। यह आधुनिकतम अर्थ-शास्त्र कहता हूँ। इसलिए सम्पत्ति-दान का वास्तविक रूप श्रम-दान ही है। श्रम ही सम्पत्ति है। उसको

दूसरी शक्ल मिलती है, तो वह सम्पत्ति कही जाती है। तो, लोगों को हम समझायेंगे कि अपने-अपने खाने, पहनने की चीजें पैदा करें और उनमें से एक हिस्सा समाज की सेवा में अर्पण करें। लेकिन आज जो माया-जाल है, उसको हम काट नहीं पा रहे हैं। इसी दृष्टि से हम सोचें, तो यह मालूम होगा कि हरएक से सम्पत्ति-दान प्राप्त करने की आवश्यकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्पत्ति निकम्मी चीज है और यह वृत्ति हम अपने मन में रखें कि सम्पत्ति निकम्मी है, तो प्रतिष्ठा श्रम को मिलेगी। यही सम्पत्ति-दान की प्रक्रिया है।

इस काम में कौन लगेगा ?

एक बात और आप सोचिये कि सम्पत्तिदान के इस काम में कौन लगेगा ? जाजूजी गये, जमनालालजी गये। उन दोनों में से कोई भी रहते, तो इस काम को वे करनेवाले थे। हमें जमनालालजी की बहुत बार याद आती है। आज भी याद आयी। खैर, जो अपना काम करके गये, उनकी स्मृति में यह काम होना चाहिए। अगर स्मृति है, तो उन मनुष्यों के रहते जो काम हुआ था, उससे ज्यादा उनकी स्मृति में हो सकता है। उनके होते स्मृति एक देह में सीमित थी। जाजूजी, जमनालालजी जैसे लोग, जो इस काम के लिए बहुत उत्सुक थे, उनकी परम्परा आगे भी कैसी चले, यही हमें सोचना चाहिए।

विजयवाड़ा
१८ दिसम्बर '५५

संपत्ति-दान-यज्ञ

: १ :

समान-वितरण

समान-वितरण का सही आशय यह है कि हरएक मनुष्य को उसकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ पूरी करने की ही साधन-सामग्री मिले, अधिक नहीं। मिसाल के तौर पर, किसीका हाजमा कमजोर है और उसको १० तोला रोटी काफी होती है तथा दूसरे को ४० तोले रोटी की जरूरत है, तो दोनों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकनी चाहिए। इस आदर्श को अमल में लाने के लिए सारी सामाजिक व्यवस्था की पुनर्रचना करनी होगी। अहिंसक-समाज इसके बदले किसी दूसरे आदर्श का संगोपन नहीं कर सकता। शायद हम इस आदर्श तक न पहुँच सकें, पर इसे सदा खयाल में रखकर इसके नजदीक पहुँचने के लिए हमें अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिस हद तक हम इस आदर्श की ओर बढ़ेंगे, उतना ही हमें सन्तोष और सुख मिलेगा और उतनी हद तक अहिंसक-समाज को अस्तित्व में लाने की दिशा में हमारे द्वारा मदद होगी।

प्रारंभ कैसे हो?

अब हम विचार करें कि 'समान-वितरण' अहिंसा के मार्ग से किस प्रकार हो सकता है। उस मार्ग में उसके लिए, जिसने इस आदर्श को अपने जीवन का अंग बना लिया है, पहला कदम यह है कि वह अपने निजी जीवन में आवश्यक परिवर्तन कर ले। वह अपने दिल में

भारत की दरिद्रता का खयाल रखकर अपनी जरूरतें कम-से-कम कर लेगा, आजीविका कमाने में बेईमानी और सट्टे को स्थान नहीं देगा, अपनी रहन-सहन जीवन के नये विचार के मुताबिक रखेगा। उसके जीवन के हरएक क्षेत्र में संयम होगा। अपने जीवन में जो कुछ सुधार करना शक्य है, वह कर लेने पर ही वह अपने साथी और पड़ोसियों में इस आदर्श का प्रचार करने लायक होगा।

धनिक संपत्ति के ट्रस्टी बनें

समान-वितरण के सिद्धान्त की जड़ में, निःसंदेह, धनिकों के पास जो अधिक संपत्ति है, उसके ट्रस्टीपन का विचार निहित है; क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार उन्हें अपने पड़ोसियों की अपेक्षा अधिक पैसा न रखना चाहिए। यह कैसे हो सकता है? अहिंसा के मार्ग से या धनिकों की संपत्ति छीनकर? दूसरी दशा में स्वाभाविकतया हमें हिंसा का सहारा लेना होगा। हिंसक कार्रवाई से समाज का लाभ नहीं हो सकता। उससे समाज दुर्बल होगा, क्योंकि जो लोग संपत्ति कमाने की शक्ति रखते हैं, उनके सद्गुणों से समाज को वंचित रहना पड़ेगा। इसलिए साफ है कि अहिंसक मार्ग बेहतर है। धनिक अपनी संपत्ति अपने अधीन रख सकेगा, जिसमें से वह अपनी जरूरतों के लिए जितना वाजिब हो, उतने का उपयोग कर सकेगा और बाकी की संपत्ति के बारे में समाज के हित में ट्रस्टी के तौर पर काम करेगा। इस बहस में ट्रस्टी की ईमानदारी मान ली गयी है।

सत्याग्रह का स्थान

अगर हद दर्जे का प्रयत्न करने पर भी धनिक लोग सही तौर से गरीबों के संरक्षक नहीं बनते और गरीब अधिकाधिक पिसकर भूख के शिकार बनते हैं, तो क्या करना चाहिए? इस पहेली को सुलझाने के

प्रयत्न में ही मैं अहिंसक असहकार और सविनय अवज्ञा जैसे सही और अचूक साधनों पर पहुँचा हूँ। धनिक लोग गरीबों के सहयोग के बिना संपत्ति इकट्ठी कर नहीं सकते। अगर यह ज्ञान गरीबों में पहुँचकर फैले, तो वे बलशाली बनेंगे और जिन विनाशकारी असमानताओं ने उन्हें भूख से मरने की स्थिति तक ला पटका है, उनसे वे अहिंसक साधनों द्वारा मुक्ति पाना सीख लेंगे।

'हरिजन', २५-८-'४०

—गांधीजी

: २ :

संपति सब रघुपति कै आही

[विनोबाजी के समय-समय पर किये गये प्रवचनों से सारांश रूप में यह संकलन किया गया है।]

१८ अप्रैल, १९५१ के रोज भूदान-यज्ञ की कल्पना सूझी। अब तो देशभर में लोगों को यह कल्पना रुच गयी है, ऐसा मान सकते हैं। भूमि-दान-यज्ञ के साथ-साथ संपत्ति-दान-यज्ञ भी क्यों न चलाया जाय, इसका मेरे मन में विचार तो चलता ही था, लेकिन भूमि का सवाल एक बुनियादी सवाल था, जिसके हल के बिना देश में मैं खतरा देख रहा था। इसलिए आरम्भ में उतना ही सवाल हाथ में लेना उचित लगा। अलावा इसके, भूमि परमेश्वर की सीधी देन है, इस बात को सब कोई सहज में समझ सकते हैं। वह उत्पादन का मूलभूत साधन है, इसलिए भी आरंभ में भूमि तक सीमित रहना अच्छा लगा। यथा-क्रम एक-एक कदम उठाना अहिंसा की प्रणाली के अधिक अनुरूप था।

लेकिन भूमि-दान-यज्ञ का कार्य जैसे-जैसे आगे बढ़ा, वैसे-वैसे संपत्ति का भी हिस्सा माँगे बगैर विचार की पूर्ति नहीं होती, यह बात भी स्पष्ट होती गयी और आखिर मेरे मन में निश्चय हो गया कि संपत्ति का भी एक हिस्सा मैं लोगों से माँगूँ।

मैं चाहता तो हूँ कम-से-कम छठा हिस्सा, फिर लोग सोच-समझकर जो भी दें। संपत्ति चाहे हमने अपने पुरुषार्थ से कमायी हो, पर अपने लिए वह नहीं है, बल्कि सबके उपयोग के लिए परमेश्वर ने हमें वह सौंपी है, यह भावना इस माँग के पीछे है। जिस पुरुषार्थ-शक्ति से हमने संपत्ति कमायी, वह शक्ति भी परमेश्वर की देन है।

संपत्ति-दान का जो मुख्य विचार है कि जो कुछ संपत्ति है, वह भगवान् की है, उसकी हमें स्थापना करनी है और उसका साधन संपत्ति-दान है, साधन-दान नहीं। साधन-दान कार्य में मदद करने-वाला है, पर मुख्य विचार तो संपत्ति-दान का है, जो गरीब और अमीर सब पर लागू होता है—जो भी खाता है, उस पर लागू होता है। सम्पत्ति की प्राप्ति में किसी पर अन्याय न हो, प्राप्ति का तरीका गलत न हो, ठीक तरीके से सम्पत्ति प्राप्त हो, उचित और ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा समाज को देकर जो बचे, उसका सेवन किया जाय और जो सेवन किया जाय, वह ट्रस्टी के नाते ही किया जाय, यह सारी वृत्ति इसमें आ जाती है।

समाजाय इदम्

जिस तरह हम यज्ञ में आहुति देते समय कहते हैं कि "इंद्राय इदम् न मम—यह मेरा नहीं है, इंद्र के लिए है" उसी तरह आज हम जो कुछ उत्पादन करते हैं, चाहे वह खेती में हो, चाहे फैक्टरी में, उसके बारे में कहना चाहिए कि "समाजाय इदम्, राष्ट्राय इदम्, न मम—यह सब मेरे लिए नहीं है, समाज के लिए है, राष्ट्र के लिए है।" अपने पास जो भी कुछ है, वह सब समाज को अर्पण करना चाहिए। फिर समाज की ओर से अपनी आवश्यकता के अनुसार जो कुछ मिलेगा, वह अमृत होगा। बचपन से हम पर अनेक लोगों के उपकार हुए हैं। इनसे उऋण होने के लिए शरीर-परिश्रम के मान्य तरीके से जो हमने कमाया हो, उसका हिस्सा समाज को देना लाजिमी हो जाता है। उसमें सम्यक्-विभाजन का उद्देश्य होता है।

× × ×

त्याग-बन्धन और भोग-बन्धन

बहुतों को यह विचार ही कठिन मालूम होता है कि जिन्दगीभर छठा या आठवाँ हिस्सा दान दें। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि वे एक

दफा शादी कर लेते हैं, तो जिन्दगीभर के लिए ही तो अपने को बाँध लेते हैं ! हिंदू-धर्म ने संन्यास की छूट रखी है, फिर भी जो मनुष्य गृहस्थी के आमरण बंधन में रहते हैं, वे इस थोड़े-से देने के बंधन से भी क्यों हिचकिचाते हैं ? इसलिए शुद्ध विचार करनेवाले इस चीज को जीवन का अंग समझ लें। जिस तरह जिन्दगीभर स्वच्छ हवा और स्वच्छ आहार हम लेते हैं, उसी तरह जीवनभर अपनी संपत्ति का एक हिस्सा लोगों को हमें देना है। दरअसल सारा-का-सारा ही देने की बात होनी चाहिए, पर ट्रस्टी के नाते अपने पास वे कुछ रख लें और बाकी का सारा दे दें।

× × ×

क्या हम संग्रह मान्य करते हैं ?

हम छठा हिस्सा माँगते हैं, तो क्या पाँच-बटा-छह का संग्रह मान्य करते हैं ? पर हमारे मान्य करने का सवाल ही नहीं है। वह भला मनुष्य छह-बटा-छह संग्रह ही मान्य कर रहा है। उसकी उस मान्यता को हम धक्का देते हैं, एक-बटा-छह माँगकर उसको हम विचार के लिए प्रेरित करते हैं। भक्तों ने कहा था : "जिसने 'हरिनाम' एक दफा बोल लिया, उसने मोक्ष-प्राप्ति के लिए कमर कस ली।" जिसने एक-बटा-छह समाज को निरंतर अर्पण करने का नियम, जीवन-निष्ठा के तौर पर कबूल किया, उसने अपनी सारी संपत्ति, अपना सारा जीवन, यहाँ तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी, समाज को अर्पित करने के लिए कमर कस ली। संपत्ति-दान-यज्ञ की तरफ देखने की यह दूरदर्शी दृष्टि है।

× × ×

यज्ञमय जीवन

अगर हमें कोई जीवनभर छठा हिस्सा देते रहें, तो भी हम यह नहीं समझेंगे कि उन्होंने हमारा पूरा विचार समझा ही है। अगर उनके

पास कोई विशेष उद्योग है, तो जो उद्योग चलता है, उसमें काम करनेवाले, सबका साझा है। अतः सबको अपना-अपना हिस्सा मिले और हिस्सा मिलने के बाद जो बाकी बचे, उसे सेवा-कार्य में दिया जाय। यह जिसने समझ लिया, उसने संपत्तिदान का विचार समझ लिया, ऐसा होगा। इस तरह करनेवाला यदि थोड़ा भी खाता है, तो उसका वह खाना भी यज्ञ होगा, आहुति-स्वरूप होगा। इस तरह अपना सारा जीवन यज्ञमय बनाने का विचार है और गांधीजी की तीव्रतम भावना थी कि संपत्ति का हर कोई ट्रस्टी हो। वह बात इसीसे पूरी होगी। इसे हम आधुनिकतम अर्थशास्त्र समझते हैं, जो वास्तव में सच्चा अर्थशास्त्र है।

× × ×

घर-खर्च का हिस्सा

अगर आमदनी के आँकड़ों के बारे में हिसाब की कोई मुश्किल मालूम होती हो, तो मैं इसमें भी संतुष्ट रहूँगा कि लोग अपने गृहस्थी-व्यय का भी एक हिस्सा दें। मानिये कि किसीके दस लाख रुपये बैंक में पड़े हैं, तो भले वे वहाँ पड़े रहें। उनमें से अगर वह घर-खर्च के लिए सालभर में पचास हजार रुपया उठायेगा, तो उसका पाँचवाँ हिस्सा याने कुल खर्च का छठा हिस्सा, संपत्ति-दान में दिया जाय, तो भी काफी होगा। घर-खर्च में बच्चों की तालीम, प्रवास-खर्च, विवाह आदि सब शुमार हों। छठा हिस्सा कोई न दे सके और आठवाँ देते हैं, या दसवाँ देते हैं, तो भी हम मान्य करते हैं, क्योंकि हम कोई टैक्स वसूल नहीं कर रहे हैं। लेकिन धनिक व्यक्ति जो घर-खर्च में साठ हजार रुपया खर्च करता हो और शतांश याने छह सौ रुपया सालाना देना कबूल करे, तो वह बेकार माना जायगा। उसके लिए कुछ शोभादायक बात होनी चाहिए। इस तरह अगर सारे हिन्दुस्तान के घर-खर्च का षष्ठांश या एक निश्चित अंश हमें मिल जाता है, तो भी संपत्ति-दान का मूलभूत विचार लोगों ने समझ लिया, ऐसा

होगा। दरिद्रनारायण को अपने घर में अधिकार का स्थान देना, यही मुख्य बात है।

खर्च का हिस्सा देने में यह एक कठिनाई हो सकती है कि यदि किसीको व्यापार में किसी साल घाटा लगा हो, तो भी उसको संपत्तिदान में अपना हिस्सा देना पड़ेगा।

जो व्यक्ति हिस्से की जगह सालाना निश्चित रकम देना चाहता है, उसके बारे में यह विचार है कि जिसने १०१ रुपया देना कबूल किया, उसकी वह रकम उसके घर-खर्च का कितवाँ अंश है; यह वह बता दे, तो अपना काम हो गया। इसमें इतना ही देखना होगा कि वह अंश उसके लिए शोभादायक है या नहीं।

गृहस्थी-खर्च का भी अंश हम जहाँ लेंगे, वहाँ उस खर्च का तफसीलवार हिसाब देखने की हमें कोई जरूरत नहीं। उसका आँकड़ा वह बता दे, तो भी बस होगा। अंश लेने में हर साल रकम कम-बेसी होगी और इसलिए वह आजीवन भी दे सकेगा। निश्चित रकम आजीवन देना मुश्किल हो जायगा। अंश देने में सहूलियत है।

इस यज्ञ में हिस्सा लेनेवाले अपने परिवार के साथ मशविरा करके सबके संतोष और पूरे प्रेम से इसमें हिस्सा लें। मैं मानता हूँ कि अगर भक्तजन इस काम में योग देंगे, तो एक जीवन-विचार के तौर पर यह कल्पना देश में फैलेगी और साम्ययोग की तरफ समाज की सहज गति होगी।

× × ×

'यज्ञ' शब्द क्यों ?

संपत्ति-दान-यज्ञ में 'यज्ञ' शब्द पूरा समझ-बूझकर जोड़ा गया है। यह एक ऐसा विचार है कि जिससे कोई बचता नहीं। हर-एक को इसमें आहुति देने का मौका मिलता है। जो धर्म-कार्य सब पर लागू होता है—जैसे सत्य वगैरह, जो अक्षरशः सार्वजनिक

है, यानी सब लोगों के लिए है, उसीको मुख्य धर्म या प्रथम धर्म कहा जाता है—'नः तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् ।'

× × ×

हर व्यक्ति संपत्ति-दान दे

संपत्ति-दान सबके लिए है। मैंने यह खयाल किया है कि भूदान देनेवाले और भूदान-यज्ञ में शरीक होनेवाले अगर दस होंगे, तो संपत्ति-दान-यज्ञ में शरीक होनेवाले पचास होने ही चाहिए। भूदान तो वह देगा, जिसके पास भूमि है। लेकिन संपत्ति-दान वह देगा, जो खाता है। न खाता हुआ मनुष्य आपने कौन-सा देखा है? इसलिए यह माँग हरएक से होगी, चाहे कोई गरीब हो या अमीर। भोगने के पहले एक हिस्सा दुनिया के लिए छोड़ें और बाकी का भोगें। यह कोई नयी बात हम नहीं कह रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सब धर्मों के आचार्यों ने यही बात कही है। लेकिन उन्होंने जो कहा, वह एक विशेष उद्देश्य के लिए कहा था। इसलिए वह सीमित था, जिसे वे 'जकात' आदि कहते थे या जो दान दिया जाता था। भगवान् ने जिसे रोजी दी है, रिज़्क दी है, उसका एक हिस्सा देना चाहिए, यह बात तो चली; परन्तु किसी खास उद्देश्य के लिए चली—याने मन्दिर, मसजिद के लिए, उपासना या अध्ययन-अध्यापन के लिए उसका उपयोग किया गया। जिसे लोग पांथिक धर्म-कार्य कहते हैं, उसमें उसका विशेष उपयोग होता था।

भूतदया का समुद्र

जिसे हम भूतदयात्मक काम कहते हैं, जैसे विधवा, अनाथ आदि को मदद देना, इसमें उसका दूसरा उपयोग होता था। पर हम भूतदया की सिर्फ नदी नहीं बहाना चाहते। हम तो भूतदया का समुद्र बनाना चाहते हैं। हम करुणा का राज्य चाहते हैं, जिसमें करुणा स्वामिनी हो और बाकी सब शक्तियाँ दासी हों। आज ऐसा है कि दूसरी शक्तियाँ

राज्य कर रही हैं और उनके राजत्व में करुणा दासी के तौर पर काम करती है। वे लोग करुणा का राज्य नहीं बना सकते। साधारण अनाथ, विधवा आदि को मदद करना ही हमारा सीमित उद्देश्य नहीं है; बल्कि समाज का परिवर्तन करना और मालकियत मिटाने की बात लोगों के दिल में बैठाना हमारा काम है। मेरे पास जो संपत्ति है, वह सबकी है, सबके लिए है, जिसमें मैं भी आ गया। दूसरों के पास जो संपत्ति है, वह सबकी है, दूसरों की भी है, जिनके पास है, उनकी भी है और मेरी भी है। इस तरह हम एक ऐसा विचार फैलाना चाहते हैं, जिससे समाज में किसी प्रकार की कोई कमी ही न रहेगी। यह दारिद्र्य का बँटवारा नहीं है, यह तो स्वामित्व-विसर्जन है और व्यक्तित्व का समाज के लिए समर्पण है, स्वातंत्र्य-पूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, जबरदस्ती से नहीं।

समूह के साथ सार्थकता

मेरा हाथ मेरे सारे शरीर की सेवा करने में अपनी सार्थकता मानता है और उसमें उसे धन्यता महसूस होती है। हाथ यह नहीं कहता कि मैं अपने लिए ही काम करूँगा। वह पाँव की भी सेवा करता है। पाँव में काँटा चुभा हो, तो हाथ को उसे निकालने की उत्सुकता होती है। उसके मन में किसी प्रकार की उच्चता-नीचता की कल्पना नहीं होती। आँख में मैल हो, तो उसे निकालने के लिए हाथ मदद में जाता है। पाँव में कोई मैल हो, तो हाथ उसे साफ करने के लिए भी जाता है। वह अपने को अलग महसूस नहीं करता। वह जानता है कि मुझे काटकर इस शरीर से अलग रख दिया जायगा, तो मैं खतम हो जाऊँगा। मेरी सारी शोभा, मेरी सारी जीवन-शक्ति इसीमें निहित है कि मैं समूह के साथ जुड़ा हुआ हूँ। इसलिए समाज में हर व्यक्ति की तरफ से अखंड नित्य दान-प्रवाह बहता रहे, हर व्यक्ति के घर में समाज का बैंक हो, यह एक बिलकुल ही नया विचार

संपत्ति-दान में है। पुराने फंड और इसमें बहुत बड़ा फर्क है। दोनों में कोई साम्य ही नहीं है।

फंड और संपत्ति-दान में अंतर

फंड इकट्ठा करनेवाले पैसा अपने हाथ में लेते हैं। इसमें हम पैसा हाथ में नहीं लेते। फंड इकट्ठा करनेवाले पहले बड़े लोगों के पास पहुँचते हैं। इसमें हम सर्व-साधारण के पास पहुँचते हैं। फंड वगैरह में सामूहिक आंदोलन का रूप नहीं होता। इसमें सामूहिक आंदोलन का रूप रहेगा। फंड में एक निश्चित रकम ली जाती है। इसमें अपनी आय या अपने व्यय का एक निश्चित हिस्सा दिया जाता है। फंड एक दफा देकर मनुष्य मुक्त हो जाता है और लेनेवाला बँध जाता है। इसमें जो देता है, वह सदा के लिए या कुछ मुद्दत के लिए अपने को बाँध लेता है। जो लेता है, वह अनेक चिंताओं से मुक्त होता है। फंड में विनियोग करने की जिम्मेवारी लेनेवाले पर रहती है। इसमें यह जिम्मेवारी देनेवाले पर रहती है। उसे मार्गदर्शन हमारी समिति से लेना होता है। फंडों में दाता लेनेवालों से हिसाब माँगता है। इसमें लेनेवाला दाता से हिसाब माँगता है। फंडों में निधि का जो उपयोग किया जाता है, उसका लोगों को कम ज्ञान होता है। इसमें जो खर्च होता है, वह स्थान पर ही होता है और सब लोगों के सामने होता है। फंड में देनेवाला अपने को मालिक समझता है, इसमें देनेवाला अपने को मालिक नहीं समझता, बल्कि वली, पंच या ट्रस्टी समझता है। फंड में देनेवाले का समाज पर उपकार होता है, ऐसा माना जाता है। इसमें देनेवाला समझता है कि मुझे एक विचार दिया गया है और अपनी संपत्ति का एक हिस्सा समाज के काम में लगाऊँ, ऐसा मौका मुझे मिला है, यह मुझ पर उपकार ही हुआ है।

इस तरह आप देखेंगे कि पुराने फंडों में और इस योजना में कोई संबंध नहीं है। मुझे विश्वास है कि जहाँ-जहाँ भूदान का आरंभ

हुआ है और जहाँ काफी भूदान मिला है, वहाँ एक ऐसा नैतिक वातावरण तैयार होगा, जिससे संपत्तिदान को जोरों से प्रेरणा मिलेगी। इसमें पैसा देने की कोई खास जिम्मेवारी नहीं है। जो अनाज पैदा करता है, वह अपने अनाज का एक हिस्सा दे सकता है। जो कागज के कारखाने का मालिक है, वह कागज दे सकता है, कोई प्रिंटिंग प्रेसवाला हो, तो वह दो-तीन दिन का श्रम दे सकता है। कोई खान का मालिक है, तो वह खान की पैदावार का एक हिस्सा दे सकता है। इस तरह अपने-अपने उत्पादन का, शक्ति का एक हिस्सा समाज को देना है।

साम्प्रदायिक दान से भी अन्तर

पुराने धर्म-कार्य, जो दान आदि के जरिये चले, उनमें और इस संपत्ति-दान में भी बहुत फर्क है। यह सांप्रदायिक दान-धर्म नहीं है। इसके जरिये स्वर्ग में लाभ मिलनेवाला हो, तो मिले, परंतु हमें उसका कोई आकर्षण नहीं है। पुराना जो भूतदयात्मक धर्म था, वैसा भी यह नहीं है, यद्यपि भूतदया का काम इसमें सहज ही हो जाता है। इसमें सारे समाज को एक परिवार बनाने की बात है। संपत्तिदान का जो काम चलेगा, उसके दानपत्र हमारे हाथ में रहेंगे और संपत्ति हर घर में रहेगी।

पैसा नहीं, 'लक्ष्मी' चाहिए

संपत्ति-दान-यज्ञ आजकल की दूसरी निधियों से बिलकुल भिन्न है। उसमें हम दान-पत्र लेते हैं, पैसे नहीं। दान का विनियोग दाता खुद ही गरीबों की सेवा के लिए करता है। लेकिन गरीबों को भी वह पैसे के रूप में मदद नहीं करेगा। संपत्ति-दान में तो किसी व्यक्ति के लिए पैसे का उपयोग होगा ही नहीं। सामुदायिक कामों के लिए हो सकता है, जैसे कुएँ के लिए सीमेंट खरीद ली, या दो-तीन किसानों को मिलाकर एक बैलजोड़ी दे दी।

जब हम लोग हर गाँव में पहुँचकर घर-घर से छठा, आठवाँ या दसवाँ हिस्सा लेंगे, तब उनसे कोई पैसा तो नहीं लेंगे। लोग अनाज देंगे, दूसरी कोई चीज देंगे। यह जो चीजें मिलेंगी, वह भी समूह को मिलेंगी, गाँवों को मिलेंगी, और इस प्रकार गाँव-गाँव में सामूहिक लक्ष्मी इकट्ठी होगी। मैं पैसा या संपत्ति शब्द इस्तेमाल नहीं करता, क्योंकि उसमें गलतफहमी होने की संभावना है। मैं 'लक्ष्मी' कह रहा हूँ। मसलन्, बढ़ई पाँच हल बना देगा, दूसरा कोई दूसरे साधन देगा। तो वह सब मिलाकर सामूहिक लक्ष्मी ही बनेगी। यही चीज हम गाँव में कहेंगे और यही शहरवालों को भी समझायेंगे। उनसे कहेंगे कि आपकी संपत्ति में दूसरों का भी हिस्सा है। आप अपने आपको उसका मालिक क्यों समझते हैं? आप भी अपनी संपत्ति के एक हिस्सेदार ही हैं। ऐसा क्यों समझते हैं कि आपका और समाज का कोई विरोध है?

× × ×

घर-घर में बैंक

गाँवों में घर-घर में अपना निज का बैंक रहेगा और जो सामूहिक जगह होगी, वहाँ सिर्फ हर घर में कितनी चीज बची हुई है, उसका हिसाब होगा। याने हर मनुष्य ने ग्राम के लिए जो दान दिया, उसका कितना हिस्सा उसके घर में है, उसका हिसाब होगा। लोग हमसे पूछते हैं कि आप अनाज का हिस्सा लेंगे, तो वह हिस्सा गाँव में किसी जगह इकट्ठा करेंगे या नहीं? तो हम जवाब देते हैं कि नहीं करेंगे। सिर्फ एक जगह कागज का ढेर जमा रहेगा और उसमें लिखा रहेगा कि फलाने घर में हमारा दस सेर अनाज है, फलाने घर में बीस सेर है और फलाने घर में पचीस सेर। ग्राम-समिति को अगर दस सेर अनाज की जरूरत पड़े, तो वह गाँववालों से पूछेगी कि इस वक्त फौरन दस सेर अनाज कौन दे सकता है? कोई मनुष्य दे देगा। तब

यह लिखा जायगा कि उसके घर में जो दस सेर अनाज था, वह खतम हो गया है। इस तरह हमें अनाज के रक्षण की किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

उधार में आनंद

जो लोग फंड इकट्ठा करते हैं, उनका नकद पर ज्यादा आधार होता है। किसीने पाँच हजार रुपये का दान दिया, तो उसके हाथ में आने पर हम समझते हैं कि उतना दान मिला। लेकिन हमें तो नकद में आनंद नहीं है, उधार में आनंद है। हम आपको दस सेर अनाज देंगे, इस तरह का कागज हमें खुश करता है। इसके बदले अगर कोई हमारे सामने दस सेर अनाज रखेगा, तो हम कहेंगे कि यह कृपा मत कीजिये। हम नकद नहीं, उधार चाहते हैं। जब हमें जरूरत पड़ेगी, तब हमारी चिट्ठी आपके पास जायगी और तब आप उसके अनुसार काम करेंगे।

संपत्ति-दान भी, बुद्धि-दान भी

महाराष्ट्र के आचार्य लिमये का पत्र आया है। वे एक महान् तत्त्वज्ञानी हैं। उन्होंने संपत्ति-दान में अपना एक हिस्सा दिया है। उन्होंने लिखा है कि "आपके पचीस सौ रुपये हमारे पास हैं। आपने कहा है कि संपत्ति-दान देनेवाला दान का एक-तिहाई हिस्सा अपनी इच्छा के अनुसार खर्च कर सकता है, इसलिए हम आठ सौ रुपये अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करेंगे और उसका हिसाब आपके पास पेश करेंगे। फिर बारह सौ रुपये एक कार्यकर्ता के लिए देंगे। सौ रुपया महीना देने को हमने अमुक व्यक्ति चुना है। वह अच्छा कार्यकर्ता है। हमारी तरफ से आप उसके लिए उतना पैसा दे सकते हैं; याने अगर आपको पसंद हो, तो आपकी आज्ञानुसार हम उसे उतना देंगे। चार सौ रुपये हमने साधन-दान के लिए रखे हैं, जिसमें से गरीबों को मदद दी जायगी, और सौ

रुपये हमने साहित्य-प्रचार के लिए रखे हैं।" श्री लिमये ने हमारे लिए कोई तकलीफ नहीं रखी। किस प्रकार से कितना बाँटना, यह सब योजना बनायी और कार्यकर्ता भी चुन लिया। सिर्फ वह योजना हमें पसंद है या नहीं, इतना ही हमें बताना है। इस तरह उन्होंने अपनी संपत्ति का हिस्सा तो दिया ही, उसके साथ-साथ अपनी बुद्धि का भी हिस्सा दिया। यही बात हम चाहते हैं।

अत्यंत शुद्ध संपत्ति-दान

एक गाँव के लोगों ने संपत्ति-दान में अपने वर्ष के बारह दिन के श्रम की उपज का दान दिया है। चीज छोटी-सी है, लेकिन मुझे तो उस पर काव्य लिखने की इच्छा होती है। श्रमदान एक अलग बात है; संपत्तिदान अलग। इसमें श्रमदान भी है; लेकिन इसमें जो उत्पादन होगा, वह संपत्तिदान में दिया जायगा। वैसे तो लाखों-करोड़ों लोग संपत्तिदान देंगे और वह उनके श्रम का ही परिणाम होगा। लेकिन सार्वजनिक काम में सीधा श्रम लेना, यह है श्रमदान और श्रम से पैदा हुई उपज का दान लेना है संपत्ति-दान। इन लोगों ने कहा कि वे बारह दिन का श्रम देंगे, याने कुल आमदनी का तीसवाँ हिस्सा देंगे। यह अत्यंत शुद्ध संपत्ति-दान होगा; क्योंकि हम दूसरों से जो आय का हिस्सा लेते हैं, उसमें गलत तरीके से हासिल की हुई संपत्ति हो सकती है और संपत्तिदान पर यह आक्षेप आ सकता है कि आप आय का हिस्सा लेते हैं, तो वह आय जिस तरीके से हासिल की है, उस तरीके को आप मंजूर करते हैं। यह आक्षेप संपत्तिदान के इस प्रकार पर, जिसमें श्रम का परिणाम है, नहीं आ सकता। कुल संपत्तिदान पर जो आक्षेप आता है, वह यह कि आय के तरीके का हम नियमन नहीं करते। उसका उत्तर यह है कि उस संपत्तिदान का विनियोग कैसा करना, इसके बारे में हम निर्देश करेंगे, तो संपत्ति हासिल करने के तरीके पर भी नियमन कर सकते हैं।

पैसे से वचन की कीमत ज्यादा

संपत्ति-दान-यज्ञ बहुत गहरी चीज है। हम भूदान-यज्ञ में हर-एक से भूमि माँगते हैं। खास दान-पत्र लेते हैं, उस पर उसके हस्ताक्षर आदि लेते हैं, सरकार उसे मंजूर करती है, तब वह अमल में आता है। वैसी पूरी योजना इस यज्ञ में नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति दान-पत्र लिखकर देगा, वही अपने अंतर्यामी भगवान् को साक्षी रखकर अपने वचन का पालन करेगा और हिसाब भी रखेगा। उस दान का पूर्ण उपयोग हमारे कहने के अनुसार करने की जिम्मेदारी उसी पर है। यह भूमि के समान एकबारगी दान देने की बात नहीं है। हर साल हिस्सा देना पड़ेगा। अतः उसको अपना जीवन नैष्ठिक बनाने का काम करना होगा। अंदर की निष्ठा जगनी चाहिए।

एक अखबारवाले ने मुझ पर व्यंग्य किया था कि विनोबा को तो न जमीन चाहिए, न संपत्ति। उसे तो केवल दानपत्र चाहिए। यह तो कागज माँगनेवाला देव है। फूल से संतोष माननेवाले देवों को जिस तरह तुम फूलों की माला चढ़ा देते हो, उसी तरह इसके गले में दान-पत्र डाल दो, तो तुम्हारी "खरचत नहीं गठरी, भजो रे भैया राम गोविंद हरि।" उसने तो खैर व्यंग्य किया था, लेकिन दरअसल बात सही है। हमारे दिल में उस आदमी के पैसे के बनिस्वत उसके वचन की कीमत कहीं अधिक है। संपत्ति-दान में आज तो यह संरक्षण है कि उसका विनियोग कैसे होगा, इसका निर्देश मैं दूँगा। लेकिन जब करोड़ों दान-पत्र इस प्रकार मिलने लगेंगे, तब निर्देश देना भी संभव नहीं होगा; तब तो अपने-आप बँटवारा होने लगेगा।

× × ×

संपत्ति-दान का उपयोग

संपत्ति-दान के उपयोग में तीन बातें हैं। एक तो यह कि गरीबों को उससे सीधी मदद पहुँचनी चाहिए। जमीन बँटेगी, जमीन काश्त करने में भी बीज, बैल, कुआँ आदि के रूप में तरह-तरह की मदद किसान को देनी होगी। संपत्ति-दान का दूसरा उपयोग होगा कार्यकर्ताओं का निर्माण करने में, याने कार्यकर्ताओं को आजीविका पहुँचाने में और तीसरा उपयोग होगा विचार-प्रचार, साहित्य-प्रचार आदि के लिए, याने कुल साहित्य सस्ता करने में। हमसे अगर पूछा जायगा कि इनमें सबसे श्रेष्ठ उपयोग आप किसे समझते हैं, तो हमारा उत्तर लोगों ने जो अपेक्षा रखी है, उससे भिन्न होगा। लोगों ने यह आशा रखी होगी कि हमारा उत्तर होगा कि सबसे श्रेष्ठ उपयोग गरीबों को मदद पहुँचाने में है। इसमें कोई संदेह नहीं कि संपत्ति-दान का ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा गरीबों को मदद पहुँचाने के लिए खर्च होगा। परन्तु संपत्ति-दान का सबसे महत्त्व का उपयोग कौन-सा है, यह अगर सोचा जाय, तो वह होगा कार्यकर्ताओं का निर्माण करने में, उनको आजीविका पहुँचाने में। यही सबसे श्रेष्ठ, मुख्य और महत्त्व का उपयोग होगा। वैसे तो कुल मिलाकर सारा काम गरीबों की सेवा के लिए ही होगा। लेकिन जैसे बच्चों के पोषण के लिए माता का पोषण करना होता है, वैसे ही इस आंदोलन में मातृस्थान में अगर कोई है तो वे हैं कार्यकर्ता। बच्चा जब माता के दूध पर रहता है, तो माता के रोग और आरोग्य का परिणाम बच्चों पर होता है। इसलिए माता के उत्तम पोषण के लिए अच्छी योजना करनी पड़ती है, नहीं तो बच्चे को भी उत्तम पोषण नहीं मिलेगा।

सेवकों को प्रथम स्थान

एक भाई ने कहा कि 'बाबा कहता है कि संपत्ति-दान का उपयोग कार्यकर्ताओं के लिए होना चाहिए।' लेकिन इसमें कुछ गलतफहमी

पैदा होने का डर है। संपत्ति-दान का उपयोग सेवकों के लिए प्रथम क्यों होना चाहिए, इस बारे में मैंने समझाया है कि इस कार्य का प्रचार ही जिन कार्यकर्ताओं के जरिये होता है, वे कार्यकर्ता ही अगर खड़े नहीं होते, तो यह कार्य ही खतम होता है। लेकिन उस भाई के मन में यह शंका आयी कि इसका परिणाम यह होगा कि समाज को ऐसा लगेगा कि कार्यकर्ताओं के लिए ही कोई योजना बनायी जा रही है, इससे अधिक इसमें क्या है? इसमें यह जो शंका का स्थान है, उसकी सफाई हमारे मन में होनी चाहिए। हम चाहते हैं कि हर घर से छठा हिस्सा हासिल हो। हम एक गाँव से एक से अधिक कार्यकर्ता की माँग नहीं करेंगे। मान लीजिये, पचास घरों का गाँव है, तो उन पचास घरों से हम आशा करेंगे कि वे एक कार्यकर्ता के जीवन की जिम्मेवारी उठायें। उनके दिये हुए दान का पचासवाँ हिस्सा ही इसके लिए काफी होगा और हम तो छठा हिस्सा माँग रहे हैं। जाहिर है कि हम जो माँगते हैं, उसका बहुत ही थोड़ा हिस्सा कार्यकर्ताओं के लिए अपेक्षित है। फिर भी यह मानें कि हम इससे कार्यकर्ताओं के लिए कुछ दे रहे हैं, तो भी इसमें किसी प्रकार के आक्षेप की गुंजा-इश नहीं है।

एक गाँव से एक कार्यकर्ता

जहाँ पर संयुक्त या सामूहिक परिवार होते हैं, वहाँ पर एक-एक परिवार की तरफ से समाज-सेवा के लिए एक-एक कार्यकर्ता देना आसान हो जाता है। ग्रामदान आदि के जरिये हम ग्राम का एक परिवार बना रहे हैं। ऐसे परिवारों से हम आशा करते हैं कि आपके द्वारा ग्राम की सेवा के लिए हमें एक कार्यकर्ता मिले। उसके कुटुम्ब के पालन-पोषण आदि की जिम्मेवारी ग्रामवाले उठायें। वह कार्यकर्ता भी काम तो करेगा ही, शरीर-श्रम और उत्पादक काम करेगा, लेकिन वह ग्राम की सेवा में लगा रहेगा। वह ग्राम के बीच में ही पैदा हुआ

होगा। गाँव-गाँव में जो कार्यकर्ता होंगे, वे उसी गाँव के रहेंगे। इसलिए इसमें किसी प्रकार के भ्रम की गुंजाइश नहीं है। किसीको कोई शंका आने का कारण नहीं है। यह बात ठीक है कि कुछ कार्यकर्ता बाहर के होंगे। दुनियाभर में जो तज्ञ लोग होते हैं, उनको हम जरूर चाहेंगे, लेकिन वे लोग भी किसी पर लादे नहीं जायँगे। जिस क्षेत्र में वे काम करेंगे, उस क्षेत्र के लोगों की रजामंदी और उनके प्रेम से ही वे वहाँ पर काम करेंगे। अगर वहाँ के लोग उनको पसंद नहीं करेंगे, तो उनको वहाँ नहीं रखा जायगा। इसलिए कार्यकर्ता या तो उस-उस गाँव के खुद होंगे या तो ऐसे होंगे, जिनको गाँववाले खुद पसंद करते हों, चाहे वे बाहर के ही हों।

गरीब कौन ?

गाँव में जो संपत्ति-दान मिलेगा, उसका एक हिस्सा कार्यकर्ताओं के, ग्राम-सेवकों के परिवार के पोषण के लिए खर्च होगा और बाकी का बचा हुआ सारा हिस्सा गाँव के गरीबों के लिए खर्च किया जायगा। पूछा जा सकता है कि जब ग्राम का परिवार होगा, तो ये गरीब कौन बचेंगे, जिनकी सेवा करनी होगी ? इसलिए हम आपको समझाना चाहते हैं कि हमारी 'गरीब' की व्याख्या क्या है। गरीब तो वह है, जिसको तालीम प्राप्त नहीं है, जिसमें शक्ति या बुद्धि कम है। गाँव-गाँव में जो ऐसे लोग रहते हैं, वे गरीब हैं। जो लोग अपने पास हजार-हजार रुपये की संपत्ति रखते हैं, लेकिन जिनमें परिश्रम करने की ताकत नहीं है, उनको भी हम गरीब कहते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के गरीब होते हैं : कोई शरीर-शक्ति-हीन गरीब, कोई बुद्धि-शक्ति-हीन गरीब। इस प्रकार कुदरत से पैदा किये हुए जो गरीब हैं और समाज से पैदा किये हुए जो गरीब हैं, उनकी चिंता हमें करनी पड़ेगी। जहाँ शरीर-श्रमप्रधान समाज बनेगा, वहाँ गरीब वह गिना जायगा, जो किसी कारण शरीर-श्रम करने में असमर्थ

हो। अगर शरीर-परिश्रम करने में असमर्थ होते हुए भी उसकी बुद्धि बहुत विकसित हुई हो, तो उसकी गरीबी मिट गयी। लेकिन जिसकी बुद्धि का विकास ही नहीं हुआ और जिसमें शरीर-परिश्रम की शक्ति भी नहीं है, वह मनुष्य पूरी तरह से गरीब है और मदद का पात्र है। ग्राम में जो संपत्ति-दान मिलेगा, उसका उपयोग ऐसे सब गरीबों के वास्ते किया जायगा।

संपत्ति निकम्मी बना देनी है

लोगों को यह चिंता हो रही है कि श्रीमानों के पास जो संपत्ति है, वह बाबा कैसे छीनता है, यह देखना है। मैं उन्हें समझाता हूँ कि हम उनकी संपत्ति की कीमत ही खतम कर देंगे। फिर वह संपत्ति हमारे पास अपने मूल्य के लिए खुद ही ढूँढ़ती हुई आयेगी। श्रीमान् लोग हमारे पास आकर कहेंगे कि 'बाबा, कृपा करके हमारी संपत्ति लीजिये और हमें प्रतिष्ठा दीजिये।' आज तक जो फंड इकट्ठा करनेवाले होते थे, वे पहले बड़े लोगों के पास पहुँचते थे। इसमें उन्हें नाहक इज्जत दी जाती है। उनकी नीतिमत्ता क्या है? किसने कितने शोषण से संपत्ति हासिल की है? यह सब नहीं देखा जाता। पहला दान उनसे लेकर हम उनको प्रतिष्ठा देते हैं। फिर दूसरे लोग उस अंदाज से अपने नाम पर उतना कम करके देते हैं। लेकिन हम व्यर्थ ही श्रीमानों को कोई प्रतिष्ठा नहीं देना चाहते।

वस्तुस्थिति यह है कि जिसे आज हम संपत्ति मान बैठे हैं, वह बहुत-सी संपत्ति तो निकम्मी होती है। उसको नाहक महत्त्व दिया जाता है। बल्कि जमाना ऐसा आया है कि उस संपत्ति की प्रतिष्ठा दिन-दिन गिर ही रही है। वैसी हालत में उस संपत्ति के विभाजन का महत्त्व है, ऐसा मैं नहीं मानता। बल्कि उस संपत्ति को अगर हम निकम्मी बना सकते हैं, तो निकम्मी

बनाना हमारा मुख्य काम है। जैसे पिस्तौल दिखा करके कोई चीज लेना चाहेगा, तो हम नहीं देंगे, यह एक शक्ति है; उसी तरह आप पैसा दिखायें, मुहरें दिखायें, तो भी हम अपनी चीज नहीं देंगे, यह भी एक शक्ति है। यह शक्ति अगर जनता में आ जाय कि जिस चीज के लिए हमने परिश्रम किया है, हम पैसे की लालच से उसे आपको नहीं देंगे, आपको चाहिए तो आप भी परिश्रम करें, तो बहुत-सी संपत्ति कूड़ा-कचरा साबित हो जायगी।

रुपया न दें, गुण्डी दें

हमारे जो सर्वोत्तम मित्र हैं, जिनके पास ढेर संपत्ति पड़ी है, उनकी संपत्ति का हमें कुछ भी उपयोग नहीं हो रहा है, इसका उन्हें रंज है। अगर बाबा उनसे दस-पाँच हजार रुपया माँगेगा, तो वे बड़े प्रेम से देंगे। लेकिन बाबा ने उन्हें पत्र लिखा है कि आप अपने हाथ की कती हुई एक गुंडी दे सकते हैं और दीजिये। हम जानते हैं कि आप दरिद्र हैं, इससे ज्यादा आप नहीं दे सकते, इसलिए कम-से-कम एक गुंडी दीजिये। जहाँ संपत्ति की कीमत ही शून्य हो गयी, वहाँ फिर वे लोग चाहते हैं कि उसकी कीमत बिलकुल शून्य न हो, बल्कि कुछ-न-कुछ कीमत हो।

भूमि और संपत्ति का अंतर

लोग समझते नहीं कि संपत्ति और जमीन में कितना फर्क है। वे कहते हैं कि बाबा जमीनवालों से जमीन माँगता है, लेकिन संपत्तिवालों से संपत्ति क्यों नहीं लेता? समझने की बात है कि भूमि वास्तविक लक्ष्मी है, उसका मूल्य काल्पनिक नहीं है। और श्रीमानों के पास जो पैसा पड़ा है, उसका मूल्य काल्पनिक है, उसका असली मूल्य नहीं है। इसलिए बाबा पहले जमीन बाँट देना चाहता है और फिर ये जो सर्वसाधारण लोग हैं, उनसे संपत्तिदान हासिल करना चाहता है; पैसे का दान

नहीं, बल्कि उनके द्वारा पैदा की हुई चीजों का दान। तब जिनके पास पैसा है, वे बाबा के पास आकर कहेंगे कि बाबा, हमने कुछ पैदा नहीं किया है, हमारे पास उतनी शक्ति नहीं है, लेकिन हमारे पास कुछ पैसा पड़ा है, सो कृपा करके ले लीजिये।

संपत्ति तोड़ने के लिए ही जन्म

संपत्ति-दान में जो 'संपत्ति' शब्द है, उससे आप भ्रम में मत पड़िये। इसमें पैसे की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं है। मैं तो अपने जीवन में यह महसूस करता हूँ कि मेरा जन्म इस संपत्ति को तोड़ने के लिए ही हुआ है। जमाना भी ऐसा है कि उसकी यह माँग है। इस वास्ते आपको संपत्तिदान बहुत मिलेगा। जिनका आज मत्सर किया जाता है, जिनसे संपत्ति छीनने की बात की जाती है, वे आपके पास दौड़े आयेंगे। लेकिन यह तब होगा, जब कि संपत्ति-दान की सेना खड़ी होगी। जब वे देखेंगे कि बीस हजार लोगों ने भूदान दिया है और पचीस हजार लोगों ने संपत्ति-दान, तो वे सोचेंगे कि हम कैसे अछूते रह सकते हैं। फिर वे आयेंगे और उनका दान हम स्वीकार करेंगे। यह एक अहिंसक प्रक्रिया है।

× × ×

संविधान के खिलाफ

हम यह जो मालकियत मिटाना चाहते हैं, वह संविधान के विरोध में है, ऐसा लोग कहते हैं। हम कहते हैं, क्या संविधान देवों का बनाया हुआ है? जैसे-जैसे मनुष्य का विचार बदलेगा, वैसे-वैसे उसका संविधान भी बदलेगा। यह बात तो नहीं कि कोई चीज हम जबरदस्ती लादना चाहते हैं! समझाने का हमारा हक है और समझने का लोगों का कर्तव्य है। अगर वे समझ गये, तो क्या उसका मतलब यह होगा कि संविधान का उन्होंने विरोध किया?

हम तो समझते हैं कि संविधान दिन-ब-दिन विकासशील होना चाहिए। मालकियत की भावना मिटनी ही चाहिए; क्योंकि हमारे पास अधिक बुद्धि, अधिक शक्ति, अधिक महत्त्वपूर्ण काम है, इसलिए हमें अधिक पैसा मिलना चाहिए, यह जो पैसे का नाता जिम्मेदारी के साथ जोड़ दिया गया है, इसे ही हम गलत समझते हैं।

यह बात जिन मित्रों को हृदयंगम होगी, उनसे मैं आशा करूँगा कि वे चाहे गरीब हों चाहे धनी; चाहे भोगी सांसारिक हों, चाहे त्यागी कार्यकर्ता; संपत्ति-दान-यज्ञ में खुद दीक्षित हों और इस विचार का प्रत्यक्ष कृति से अधिक संशोधन करें।

मेरे काम के बारे में किसी प्रकार की गलतफहमी न रहे। यह एक धर्म-विचार है। मनुष्य को आसक्ति से छुड़ाकर अपरिग्रही बनाना मेरा उद्देश्य है। इसलिए जो बड़े-बड़े परिग्रही हैं, उन्हींके पास दान माँगने के लिए पहुँचना है, ऐसी बात नहीं है। आसक्ति तो एक लँगोटी में भी रह सकती है। इसलिए हरएक व्यक्ति के पास पहुँचकर विचार समझाना और दानपत्र हासिल करना है।

× × × ×

अपरिग्रह की शक्ति

अपरिग्रह में कोई शक्ति है, यह हम लोगों ने अब तक महसूस नहीं किया। हमने इतना ही महसूस किया कि अपरिग्रह में चिंता-मुक्ति है, इसलिए साधकों को परिग्रह छोड़ना चाहिए। संपत्ति छोड़कर चिंतन के लिए मुक्त होना चाहिए। जो ध्यान, अध्ययन आदि करना चाहते हैं, उन्हें संपत्ति से मुक्त रहना चाहिए। "घर में पाँच कुर्सियाँ हैं, दो मेजें हैं, तीन बेञ्चें हैं, तो सारा समय झाड़ू लगाने में ही जायगा; ध्यान के लिए मौका ही नहीं मिलेगा। इसलिए ऐसे परमार्थी लोगों को परिग्रह से मुक्त रहना चाहिए।" इस तरह हमने अपरिग्रह से, चिंता-मुक्ति से, ज्यादा अपेक्षा नहीं की। लेकिन हम अपरिग्रह

की शक्ति दिखाना चाहते हैं। हम कहते हैं कि परिग्रह में वह शक्ति हर्गिज नहीं हो सकती, जो अपरिग्रह में है। इसकी मिसाल अपनी यह देह है। इस देह में सारा खून सर्वत्र बँटा हुआ है, याने इसमें अपरिग्रह है। अगर खून का परिग्रह किसी एक हिस्से में हो जाय, जैसे पाँव में खून का संग्रह हो जाय, तो उसे फूला हुआ पाँव कहेंगे। इस तरह परिग्रह में शक्ति हर्गिज नहीं हो सकती, बल्कि परिग्रह में दुर्बलता हो सकती है। अपरिग्रह का अर्थ है, महान्, बँटा हुआ परिग्रह। अपरिग्रह याने अत्यन्त परिग्रह। 'अ' शब्द का अर्थ है, 'अत्यन्त'। हम कहते हैं कि अपरिग्रह की योजना में एक कौड़ी भी पड़ी नहीं रहेगी, हर क्षण उत्पादन में लगी रहेगी।

चिन्ता-मुक्ति और उत्पादन-वृद्धि

मान लीजिये कि मैंने एक किताब पढ़ ली और वह किताब दस साल तक मेरे सन्दूक में पड़ी रही, तो इस परिग्रह से दुनिया को क्या लाभ हुआ और मुझे भी क्या लाभ हुआ ? जहाँ मैंने वह किताब पढ़ ली, वहाँ फौरन दूसरे के पास जानी चाहिए और फिर वहाँ से तीसरे के पास जानी चाहिए। इस तरह होते-होते वह किताब फट जायगी, तो ज्ञान दूर-दूर तक फैलेगा और वह किताब मुक्त हो जायगी। इसी तरह हमारी सम्पत्ति जब सतत दूर-दूर लोगों के काम में आयेगी, तो उसका उपयोग भी होगा और हम मुक्त भी होंगे। इस तरह अपरिग्रह में चिन्तामुक्ति के अलावा उत्पादन बढ़ाने की भी अपार शक्ति है। वह सारा परिग्रह घर-घर में बाँटा जायगा, इसलिए उसमें साम्यावस्था, प्रेमभाव, निर्वैरता और अद्वेष पैदा होगा। पहले के लोग अपरिग्रह से चिन्ता-मुक्ति, अद्वेष आदि चाहते थे; वह तो हम चाहेंगे ही, लेकिन उसके अलावा उससे उत्पादन बढ़ाने में ही मदद होगी। सम्पत्तिदान के जरिये हम अपरिग्रह की यह शक्ति प्रत्यक्ष दिखाना चाहते हैं।

× × × ×

अक्सर ऐसा माना जाता है कि अपरिग्रह तो गांधीजी, विनोबा या ऐसे संन्यासियों के लिए ही है; और सामान्य जनता के लिए तो परिग्रह ही है। इसलिए लोग संन्यासियों का आदर तो करते हैं, परंतु कहीं-कहीं उन्हें अपने घर में भी प्रवेश नहीं करने देते। संन्यास को अन्तिम आदर्श के तौर पर मानते तो हैं, लेकिन गृहस्थ-जीवन में परिग्रह ही चलता है। धर्मविचार को इस तरह खंडित करने से उसका सीमित लाभ ही हो सकता था। नतीजा यह हुआ कि लोभी का मुकाबला करते समय निर्लोभी भी लोभी बन गया। आज दुनिया में लोभ का, परिग्रह का राज है। परिग्रह के इर्द-गिर्द ऐसे कानून खड़े किये गये हैं कि परिग्रह गलत नहीं माना जाता। चोरी को हम गुनाह मानते हैं, पर जो संग्रह करके चोर को प्रेरणा देता है, उसकी कृति को चोरी नहीं मानते। उपनिषदों की कहानी में राजा कहता है : "मेरे राज में न तो कोई चोर है, न कंजूस।" क्योंकि कंजूस ही चोरों को पैदा करते हैं! चोरों को तो हम जेल भेजते हैं और उनके पिता को मुक्त रखते हैं! वे शिष्ट-प्रतिष्ठित बनकर गद्दी पर बैठते हैं। यह कैसा न्याय है? गीता ने भी उन्हें चोर कहा है। लेकिन हमने तो आज गीता को संन्यासियों की किताब कहकर उससे भी संन्यास ले लिया है।

× × × ×

अस्तेय और अपरिग्रह

अस्तेय और अपरिग्रह, दोनों के मेल से अर्थ-शुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन अस्तेय करता है, और उसकी मात्रा का नियमन अपरिग्रह करता है। अस्तेय कहता है कि शरीर का निर्वाह मुख्यतया शरीर-श्रम से, यानी उत्पादक परिश्रम से होना

चाहिए। शरीर-श्रम के बगैर अगर हम अन्न खाते हैं, तो एक खतरा पैदा करते हैं। दुनिया की बहुत-सी वर्तमान विषमताएँ, बहुत-से दुःख और पाप शरीर-श्रम टालने की नीयत से पैदा हुए हैं। वैसी नीयत रखनेवाला गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करता है। इसलिए अस्तेय-व्रत शरीर-श्रम द्वारा संपत्ति-निर्माण पर जोर देता है।

× × × ×

आवाहन !

हम चाहते हैं कि जैसे बारिश में दूर-दूर से पानी आता है और जहाँ ढलाव है, वहाँ दौड़ जाता है, ताकि समुद्ररूपी गढ़ा भरे, पूर्ण हो, वैसे ही हर घर से और हर व्यक्ति से कुछ-न-कुछ सम्पत्तिदान बहना आरम्भ हो और जो सबसे नीचे हैं, सबसे दुःखी हैं, उनके लिए उसका उपयोग हो।

× × × ×

मालकियत की जड़ें टूट रही हैं और इस वास्ते मालकियत के बचाव के लिए धर्मशास्त्र से लेकर अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तक का आक्रमण होता है। आज की समाज-रचना के बचाव के लिए आज के संविधान का आधार भी लिया जायगा। लेकिन यह तो कोई नयी बात नहीं है। इसके लिए वेदों का भी आधार लिया जायगा। लेकिन हमारे मन में पूरा विश्वास है कि इस जमाने में, इस हालत में माल-कियत रखना अधर्म है। उसे तोड़ना ही चाहिए। ईश्वर पर भरोसा और काम में श्रद्धा रखकर हमारे भाई और बहनें जुट जायँगी, ऐसा हमें विश्वास है।

—विनोबा

: ३ :

सम्पत्ति-दान-यज्ञ

[श्रीकृष्णदास जाजू]

प्रास्ताविक

अब सारा देश भूदान-यज्ञ से परिचित हो गया है। जब कार्यकर्ता लोग जमींदारों से भूदान-यज्ञ के लिए जमीन माँगने जाते थे, तब कुछ जमींदार यह प्रश्न करते थे : 'जैसे हमसे जमीन माँगी जाती है, वैसे ही जो धनिक लोग हैं और जिनके पास करोड़ों की सम्पत्ति पड़ी है, उनसे उनकी सम्पत्ति का हिस्सा क्यों नहीं माँगा जा रहा है?' वास्तव में सम्पत्ति-दान-यज्ञ भूदान-यज्ञ के गर्भ में था ही, अब तक उसने प्रकट रूप नहीं लिया था। दोनों यज्ञों में से प्रथम केवल भू-दान का ही प्रारम्भ क्यों हुआ, इसका खुलासा पूज्य विनोबाजी ने कई बार किया है। हर कोई समझ सकता है कि जमीन का प्रश्न कुछ विशेष और निराला ही है। ईश्वर ने जमीन पैदा की, मनुष्य को भी पैदा किया, मनुष्य के जीवन का आधार जमीन ही है। पर उससे आजीविका तभी मिलती है, जब शरीर-श्रम द्वारा उससे कोई चीज पैदा की जाय। हवा और पानी की तरह जमीन पर भी किसीकी व्यक्तिगत मालकियत रहना न्याय्य नहीं है। जमीन समाज की ही समझी जाय। ईश्वरीय संकेत तो यह दीखता है कि मनुष्य जमीन पर मेहनत कर अपना जीवन चलाये और जो जैसा शरीर-श्रम करे, उसे उसका पूरा फल भी मिले। पर मनुष्य की गलत करतूत के कारण कुछ ऐसा हो गया है कि उनके पास बड़ी तादाद में जमीन

इकट्ठी हो गयी है, जो जमीन पर श्रम नहीं करते। जो जमीन जोतते हैं या जोतना चाहते हैं, उनमें से बहुतों के पास अपने गुजारे के लिए भी मालिकी हक की जमीन नहीं है। फलस्वरूप उनको अपने श्रम के फल का एक बड़ा हिस्सा तथाकथित मालिक को दे देना पड़ता है। इसलिए भूमिहीनों को भूमि देने का प्रश्न पहले हाथ में लेना उचित ही था और बहुत-से काम एक साथ हाथ में लेने से कोई एक भी पूरा नहीं सधता। मनुष्य की शक्ति परिमित है, इसलिए एक काम हाथ में लेकर उसीके पीछे पड़ने से उसके सफल होने की आशा रहती है। अब, जब कि भूदान-यज्ञ का काम काफी मात्रा में चल निकला है और उसके सफल होने में शंका नहीं रही है, तब यह बात स्वाभाविकतया सामने आती है कि जमीन की तरह दूसरी संपत्ति भी व्यक्तिगत मालकियत की न मानकर समाज की मानी जाय। अर्थात् जो सिद्धांत भू-दान के पीछे है, वही अन्य संपत्ति पर भी लागू हो। इसके अलावा जिन्हें यज्ञ की जमीन दी जाती है, उन्हें साधन-सामग्री मुहैया कर देने के लिए धन की आवश्यकता भी है। समय पाकर संपत्ति-दान-यज्ञ का धर्म-चक्र-प्रवर्तन भी भूदान-यज्ञ की तरह जोरों से चल पड़ेगा। अतः विनोबा ने इस विषय में जो कुछ प्रवचन दिये हैं, उनका बारीकी से अध्ययन कर लेना जरूरी है। इस पुस्तिका में उनके प्रवचनों में से कुछ अंश प्रारम्भ में दिये गये हैं। मैं जब भूदान-यज्ञ के प्रचार के लिए घूमता था, तब भूदान-यज्ञ के साथ संपत्ति-दान-यज्ञ के बारे में भी जो विचार मेरे मन में उठे, वे इस पुस्तिका में संक्षेप में लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। विशेषकर मेरा निवेदन धनिक व्यक्तियों से है। प्रायः जो परम्परा चलती है, उसे हम सही मान लिया करते हैं। उसकी जड़ में जाने का प्रयत्न नहीं करते। अगर उसकी जड़ की खोज करें, तो शायद हमें अपने विवेक से ही मालूम हो जाय कि अब

तक की मानी हुई अनेक मान्यताएँ कितनी गलत थीं। यहाँ मैं कुछ विचार धनिकों के सामने उनके चिन्तन के लिए रखता हूँ, इस आशा से कि वे खुद सोचें कि सम्पत्ति कमाने और उसे अपने पास रखने तथा उसके उपयोग के बारे में जो कुछ हमारे विचार बने हैं, वे कहाँ तक सही हैं। इसी प्रकार के मनोमंथन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्रगति करता है।

'दान' और सम्पत्ति का स्वामित्व

इन यज्ञों में जो 'दान' शब्द का उपयोग किया गया है, उसका अर्थ समझ लेना आवश्यक है। अब तक 'दान' शब्द से यही माना जाता रहा है कि एक व्यक्ति दूसरे को दया करके कुछ दे या अपने पारलौकिक कल्याण के लिए कुछ खर्च करे। विनोबाजी ने बताया है कि शंकराचार्यजी ने 'दान' का अर्थ 'संविभाग' किया है। संविभाग यानी सम्यक् विभाग—वाजिब बँटवारा, जैसा कि संयुक्त कुटुम्ब में भाइयों में हक से होता है। इस अर्थ में विनोबाजी इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। प्रचलित दान के अर्थ में यह बात मानी गयी है कि जिस चीज का दान किया जाता है, दाता उसका मालिक है और अपने पास रखने का उसे अधिकार है। पर भूदान-यज्ञ में यह आशय है कि हमारे पास जो आवश्यकता से अधिक जमीन है, उस पर हमारा अधिकार नहीं है। कई कारणों से वह हमारे पास आ गयी, अब तक हमने उसे अपने पास रखा, यह भूल हुई, जिसे दुरुस्त करना है। इसी प्रकार दूसरे पक्ष में जिस भूमिहीन को जमीन दी जाती है, वह यह न माने कि दीनता या दरिद्रता के कारण जिस चीज पर उसका हक नहीं है, उसको वह दूसरों की मेहरबानी के रूप में ले रहा है। उल्टे यह समझकर ले कि वह पाने का उसे हक है।

अधिकार में अनधिकार कैसे ?

अभी जो संपत्ति के बारे में विचार-प्रणाली चल रही है, उसको देखते हुए ऊपर का कथन कुछ अजीब-सा लगता है। संपत्ति का मालिक समझता है कि मैंने मेहनत करके, चाहे वह शारीरिक हो या बौद्धिक, संपत्ति कमायी, किसीकी चोरी नहीं की, कानून ने जो साधन उपलब्ध कर दिये हैं, उनके अनुसार ही धन कमाया। उसे भोगने का मेरा अधिकार है। यह मेरा अधिकार कानून ने मान रखा है, समाज भी मानता है। इस दशा में उस सम्पत्ति पर मेरा अधिकार नहीं है, यह बात जँचती नहीं। इसी प्रकार जिसको दान मिलेगा, उसने वह जमीन या संपत्ति कमाने के लिए परिश्रम नहीं किया, उससे उसका कोई संबंध नहीं आया और कानून से उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता; इस दशा में उसका हक है, यह बात कैसे मानी जाय ? केवल कल्पना से व्यावहारिक काम कैसे चल सकता है ? बिना कमाये किसीका किसी चीज पर हक कैसे हो सकता है, जब कि कानून उसका समर्थन नहीं करता ?

कानून और मान्यता की अपेक्षा न्याय सर्वोपरि है

हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करें। कानून और समाज की मान्यता का मूल्य आँकना होगा। भूलना न चाहिए कि कानून और मान्यता के अलावा न्याय भी एक चीज है, जो सर्वोपरि है। उसका अधिकार कोई मेट नहीं सकता, क्योंकि उसकी जड़ बाहर न होकर अन्तरंग में, आत्मा में, मनुष्य की सदसद्विवेक बुद्धि में है। इस संबंध में यह बात खयाल में रखनी चाहिए कि किसी समय-विशेष में समाज की या कानून की जो धारणा रहती है, वह ठीक ही रहती है, ऐसा नहीं है। कानून तो बहुधा प्रचलित परम्परा को लेकर चलता है। समाज की मान्यता भी बहुत करके रूढ़ि को लेकर

चलती है। जो बात कानून या समाज मानता है, वह सदा न्याय की ही होती है, ऐसा नहीं कह सकते। दीर्घकाल के इतिहास का परीक्षण करने से मालूम होगा कि एक जमाने में जो मान्यताएँ सही मानी जाती थीं, उनमें समय पाकर आमूल परिवर्तन हो गया। मान्यताओं के बदलने के साथ कानून भी बदल गया। जब तक मान्यता चलती रही, तब तक उसके सही होने के बारे में किसीके मन में शंका नहीं थी; अगर थोड़ों के मन में शंका रही होगी, तो उसका उस समय की विचारधारा पर कोई असर नहीं पड़ा। समय पाकर विवेक जाग्रत हुआ; मनुष्य ने देखा कि जो बात आज मानी जाती है, वह घोर अन्याय की है। अन्त में परिवर्तन होकर रहा। मान्यता बदलने पर राजसत्ता को कानून भी बदलना पड़ता है। अगर राजसत्ता वैसा न करे, तो वह टिक नहीं सकती। विवेक जाग्रत होने पर अर्थात् गलती दीख पड़ने पर मान्यता कितनी ही पुरानी और व्यापक क्यों न हो, उसे बदलना ही पड़ता है। स्पष्टीकरण के लिए एक-दो उदाहरण लें।

गुलामी की प्रथा संसारभर में हजारों वर्षों तक चलती रही। उस लंबे अरसे में विद्वान्, तत्त्ववेत्ता और साधु-संतों के रहते हुए भी वह चलती रही। एक बड़े नामी तत्त्ववेत्ता ने तो उसका समर्थन भी किया था। कुछ गुलाम लोग खुद भी मानते थे कि वह प्रथा उनके हित की है। फिर भी मनुष्य का विवेक जाग्रत हुआ। अपने जैसे ही हाड़-मांस और सुख-दुःख की भावना रखनेवालों को एक दूसरा बलवान् या धनवान् मनुष्य गुलामी में जकड़ रखे, क्या यह बात न्याय्य है, ऐसा प्रश्न सामने आया। इसको हल करने के लिए आपस में युद्ध भी हुए। अन्त में गुलामी की प्रथा मिटकर रही। इसी प्रकार राजाओं की संस्था की बात है। जगत्भर में हजारों वर्षों तक व्यक्तियों का, बादशाहों का, राज्य चला। हमारे भारत में तो 'नाविष्णुः पृथिवीपतिः' तक मान्यता रही। पर अन्त में 'क्या किसी

एक व्यक्ति को करोड़ों आदमियों को अपनी हुकूमत में रखने का अधिकार है' यह प्रश्न खड़ा हुआ। उसे हल करने के लिए अनेक घनघोर युद्ध हुए और सदियों तक कहीं-न-कहीं झगड़ा चलता रहा। असंख्य लोगों को यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। अंत में राज्य-प्रथा मिटकर रही और राजसत्ता प्रजा के हाथ में आयी। अब भी यद्यपि कहीं-कहीं जनतंत्र के नाम पर कुछ व्यक्ति अपनी अनियंत्रित सत्ता चलाने की कोशिश करते रहते हैं, परंतु वह बात सबको खटकती है और निःसंशय मान लेना चाहिए कि अन्त में वह टिकनेवाली नहीं है। हमारे यहाँ की अस्पृश्यता की बात भी इसी तरह की रही। हम उसे धार्मिक भी मानते रहे। अब कानून से ही वह दंडनीय है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि समय-समय पर विचारों में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए और हजारों वर्षों तक चलती हुई मान्यताएँ छोड़ देनी पड़ीं। ऐसी ही कुछ बात संपत्ति के मालिकी हक के बारे में है।

सम्पत्ति कैसे बनती है ?

यहाँ थोड़ा इसका विचार कर लें कि संपत्ति बनती कैसे है ? यह खयाल गलत है कि रुपया, नोट या सोना-चाँदी का सिक्का संपत्ति है। ये तो संपत्ति के माप-तौल के साधन-मात्र हैं। संपत्ति वे ही चीजें हैं, जो किसी-न-किसी रूप में मनुष्य के उपयोग में आ सकती हैं। उनमें से कुछ ऐसी हैं, जिनके बिना मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता; और कुछ सुख-सुविधा और आराम के लिए होती हैं। अन्न, वस्त्र और मकान मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, जिनके बिना उसकी गुजर-बसर नहीं हो सकती। इनके अलावा दूसरी अनेक चीजें हैं, जिनके बिना मनुष्य निभा सकता है।

संपत्तिरूपी ये सब चीजें बनती कैसे हैं ? वे अपने-आप तो बनती नहीं, न आकाश से टपकती हैं। कोई जन्म के साथ लाता

भी नहीं, बल्कि जन्म के साथ तो कुछ आवश्यकताएँ ही उत्पन्न होती हैं, जिनको पूरा करने के लिए निरन्तर दौड़-धूप चलती रहती है। सृष्टि में जो नानाविध द्रव्य हैं, उनको लेकर मनुष्य शरीर-श्रम करता है, तब यह काम की चीजें बनती हैं। अतः संपत्ति के मुख्य साधन दो हैं: सृष्टि के द्रव्य और मनुष्य का शरीर-श्रम। यन्त्र से कुछ चीजें बनती दीखती हैं, पर वे यन्त्र भी शरीर-श्रम से बनते हैं और उनको चलाने में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शरीर-श्रम की आवश्यकता होती है। केवल बौद्धिक श्रम से कोई उपयोग की चीज नहीं बन सकती, अर्थात् बिना शरीर-श्रम के संपत्ति का निर्माण नहीं हो सकता।

पर आखिर संपत्ति की मालकियत में शरीर-श्रम करनेवालों का स्थान क्या है? जो प्रत्यक्ष शरीर-श्रम के काम करते हैं, उन्हें तो गरीबी या कष्ट में ही अपना जीवन बिताना पड़ता है और उन्हींके द्वारा उत्पादित संपत्ति दूसरे थोड़े-से हाथों में ही इकट्ठी होती रहती है। श्रमजीवियों की बनायी हुई चीजें व्यापारियों या दूसरों के हाथों में जाकर उनके लेन-देन से कुछ लोग मालदार बन जाते हैं। वर्षभर मेहनत कर किसान अन्न पैदा करता है। बहुत दफा तो उसकी खुद की आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं, पर वही अनाज व्यापारियों के पास जाकर उनको धनवान् बनाता है। जिन मजदूरों की मेहनत के बिना कारखाना चलना ही असंभव है; उनको तो विशेष प्राप्ति होने की आशा नहीं। अगर मजदूर योग्यता प्राप्त कर लें, तो धनिकों और व्यवस्थापकों के बिना भी कारखाना चल सकता है। अकेले व्यवस्थापक और धनिक स्वयं उन्हें कदापि नहीं चला सकते, फिर भी उन धनिकों और व्यवस्थापकों को मजदूरों की अपेक्षा कितना ही गुना अधिक पैसा मिलता है। संपत्ति बनाते हैं मजदूर और धन इकट्ठा होता है उनके पास, जो मजदूरी नहीं करते। उल्टे वे मजदूरी और मजदूर को नफरत की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार संपत्ति चंद लोगों के पास इकट्ठी होती

है। इन लोगों की संख्या सौ में शायद १० ही हो, जब कि शरीर-श्रम करनेवालों की संख्या करीब ६० है।

इन धनिकों की संपत्ति का मूल देखा जाय, तो वह श्रमिक के श्रम या गरीब की जेब में ही मिलेगा। धनिकों के पास जो पैसा है, वह श्रमिक या गरीब की जेब से ही निकला हुआ पाया जायगा। गरीबों को उनके श्रम का पूरा फल नहीं मिलता, अर्थात् गरीब के अधिक गरीब बनने पर धनिकों की संपत्ति बढ़ती है। उस संपत्ति पर उनका मालिकी हक माना जाता है। कानून या सामाजिक मान्यता कुछ भी हो, पर क्या यह स्थिति न्यायोचित है ?

श्रमजीवी और बुद्धिजीवी में श्रेष्ठ कौन ?

यहाँ हम इस प्रश्न का विचार कर लें। जीवन-निर्वाह या धन कमाने के लिए अनेक धंधे चल रहे हैं। इनके मोटे तौर पर दो वर्ग किये जा सकते हैं : कुछ धंधे ऐसे हैं, जिनमें शरीर-श्रम आवश्यक है और कुछ ऐसे हैं, जो बुद्धि के बल पर चलाये जाते हैं। पहले प्रकार के धंधों को हम श्रमजीवियों के धंधे कहें और दूसरों को बुद्धिजीवियों के। राजकाज चलानेवाले मंत्री आदि तथा राज्य के कर्मचारी ऊँचे-से-ऊँचे पद से लेकर नीचे के क्लर्क तक, न्यायाधीश, वकील, डॉक्टर, अध्यापक, व्यापारी आदि धंधेवाले ऐसे हैं, जो अपना भरण-पोषण केवल बौद्धिक काम से करते हैं। दूसरे वर्ग में वे आते हैं, जो शरीर-श्रम से अपना निर्वाह करते हैं; जैसे कि किसान, मजदूर, बढ़ई, राज, लोहार, चमार, भंगी आदि। समाज के व्यवहार के लिए इन बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों, दोनों प्रकार के लोगों के धंधों की जरूरत है। पर सामाजिक दृष्टि से उन धन्धों के मूल्यों में बहुत फर्क है। यह भी बहस की जाती है कि जैसे कुछ लोगों को शरीर-श्रम करना पड़ता है, वैसे दूसरों को बौद्धिक श्रम करना पड़ता है, बौद्धिक

श्रम का महत्त्व शरीर-श्रम के जितना ही, बल्कि उससे अधिक है। पर हम गहराई से सोचेंगे, तो पता चलेगा कि समाज-धारणा की दृष्टि से स्थिति कुछ और ही है।

कल्पना करें कि अगर श्रमजीवी लोग अपने-अपने धंधे एकाएक छोड़ दें, तो परिणाम क्या होगा? मनुष्य-जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की चीजें भी नहीं बन सकेंगी, समाज जिन्दा नहीं रह सकेगा। दूसरी ओर अगर बुद्धिजीवी लोग अपने धंधे छोड़ दें, तो समाज में कुछ अव्यवस्था जरूर होगी, पर समाज मरेगा नहीं। बुद्धिजीवियों का जीवन भी श्रमजीवियों के धंधों पर अवलंबित है। इससे कल्पना की जा सकती है कि समाज के अस्तित्व के लिए श्रमजीवियों का कितना महत्त्व है। ऐसा होते हुए भी दैवदुर्विलास यह है कि श्रमजीवियों की मजदूरी या आमदनी कम है, समाज में उनकी प्रतिष्ठा नहीं और उनको अपना जीवन प्रायः कष्ट में ही बिताना पड़ता है। बालकों की शिक्षा, बीमारी में दवा-पानी, मनोरंजन आदि बातें तो उनके लिए दूर की ही हैं। इसके विपरीत बुद्धिजीवियों का वेतन या मुनाफा ज्यादा है और समाज से उन्हें बढ़ी-चढ़ी प्रतिष्ठा तथा ऐश-आराम भी उपलब्ध हैं। इस व्यवस्था में आज समाज को कोई दोष नहीं दीखता। कानून भी इस स्थिति का समर्थन करता है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या यह न्यायोचित है?

अब हम मूल प्रश्न पर आ जायँ।

क्या बुद्धिजीवी को अधिक धन कमाने का हक है?

धन-संचय के और अधिक धन कमाने के पक्ष में भी कुछ बातें कही जाती हैं। उनका भी विचार करना चाहिए। देश और विदेश के उच्चतम विद्यालयों में लंबी अवधि तक शिक्षा पाकर कोई विशेषज्ञ, जैसे कि डॉक्टर, अपना धंधा करने लगता है; वह सफलता से चलता है; सफलता से चलाने लायक योग्यता भी उसमें है। वह मानता है और

समाज भी मानता है कि उसे अपनी योग्यता द्वारा अधिक-से-अधिक धन कमाने का अधिकार है। वह अपनी मनमानी फीस मुकर्रर करता है। अगर कोई उसे कम फीस लेने को कहे, तो वह जतलाता है कि उसने वर्षों तक कठोर परिश्रम करके और खर्च सहन करके योग्यता प्राप्त की है, तो उसे उतने ही परिमाण में मुआवजा मिलना चाहिए। गरीब बीमार हो, तो कभी-कभी उसे थोड़ी राहत भले ही मिल जाय, परन्तु राहत का वह हकदार नहीं माना जाता। इसी प्रकार जो भाई कानून, इंजीनियरिंग आदि विद्याओं में निष्णात होते हैं, उनका भी यही हाल है। नामी लेखक, कवि, चित्रकार आदि कलाविदों की भी यही कथा है। ऐसा ही हक व्यापारी, उद्योगपति, व्यवस्थापक आदि भी जताते हैं।

व्यापारी और उद्योगपतियों के लिए अर्थ-शास्त्र ने यह नियम बताया है कि खरीदी सस्ती-से-सस्ती हो और बिक्री महँगी-से-महँगी। मुनाफे की कोई मर्यादा नहीं। जो कारखाना मजदूरों के शरीर-श्रम के बिना चल ही नहीं सकता, उसके मजदूर को सौ-पचास रुपये मासिक से अधिक भले ही न मिलें, पर व्यवस्थापकों और पूँजी लगानेवालों को हजारों-लाखों का मिलना आक्षेपार्ह नहीं माना जाता। प्रचलित विचार-धारा यह है कि बुद्धिमानों को अमर्यादित धन कमाने का और अपने पास संपत्ति इकट्ठी करने का हक है; क्योंकि उन्होंने उतना धन कमाने की शक्ति और कला प्रयास द्वारा प्राप्त कर ली है। जिन्हें वैसी शक्ति या कला प्राप्त नहीं है, उन्हें अधिक नहीं मिलता या भूखों भी रहना पड़ता है, तो दूसरे को दोष क्यों दिया जाय? पर इस बात पर हमारा ध्यान नहीं जाता कि उन गरीबों में भी बुद्धि है और उन्हें मौका मिलता, तो वे भी बुद्धिजीवियों जैसी ही शक्ति प्राप्त कर सकते।

इस बात को हम छोड़ें, यहाँ तो इसका परीक्षण करना है कि इन शक्तिशालियों का असीम धन कमाने का अधिकार माना जाय या नहीं? कल्पना कीजिये कि किसी बालक को हम उसके बिलकुल

छुटपन में ही कहीं एकांत में छोड़ दें, उसका जनता से संपर्क न आने दें, उसके रक्षण और पोषण की व्यवस्था कर दें और उसे वैसे ही बढ़ने दें, तो परिणाम क्या होगा ? वह बोली भी नहीं सीख सकेगा, अपने दिल की बात दूसरे को समझा नहीं सकेगा और दूसरे की बात खुद समझ नहीं सकेगा, व्यवहार बिलकुल नहीं चला सकेगा। समाज में रहने से अर्थात् समाज की कृपा से ही मनुष्य व्यवहार चलाने लायक बनता है। बालक प्राथमिक शाला से लेकर देश-विदेश के ऊँचे-से-ऊँचे महा-विद्यालयों में सीखकर जो योग्यता प्राप्त करता है, वे शिक्षालय उसके निज के नहीं होते। वे या तो सरकार द्वारा चलाये जाते हैं, जिनका खर्च आम जनता से टैक्स के रूप में वसूल किये हुए पैसे से चलता है या दानी लोगों की कृपा से। जो कुछ पढ़ने की फीस दी जाती है, वह तो खर्च के हिसाब से नगण्य है। विद्या पढ़ने के लिए जो पैसा खर्च किया जाता है, वह भी उसे या उसके घरवालों को ऊपर बताये मुताबिक समाज से ही मिला है। उसको समाज का अधिक कृतज्ञ रहना चाहिए कि उस पैसे के बल पर वह विद्या पढ़कर योग्यता प्राप्त कर सका। इस सारी शिक्षा में जो कुछ ज्ञान मिलता है, वह भी हजारों वर्षों तक अनेक तपस्वियों ने मेहनत करके जो कण-कण संग्रहीत कर रखा है, उसीके बल पर मिलता है। व्यापारी और उद्योगपति अपनी कला विद्यालयों से और अपने साथियों से प्राप्त करता है।

व्यक्ति खुद अपनी बुद्धि का कुछ उपयोग तथा अध्ययन जरूर करता है। पर योग्यता प्राप्त करने में उसका खुद का हिस्सा इतना कम है कि अगर ऊपर लिखे अनुसार समाज की मदद न मिले, तो वह कुछ विशेष करने लायक बनेगा ही नहीं। इस दशा में, जब कि अपनी योग्यता प्राप्त करने में हमारा खुद का हिस्सा अल्पतम है और समाज की कृपा का अंश अत्यधिक, तो हमें जो योग्यता प्राप्त हुई है, उसका उप-योग समाज को अधिक-से-अधिक देना और उसके बदले में समाज से कम-से-कम लेना, यही न्याय्य तथा हमारा कर्तव्य माना जा सकता

है। पर चल रहा है कुछ उल्टा ही। व्यक्ति समाज को कम-से-कम देने की इच्छा रखता है, समाज से अधिक-से-अधिक लेने का प्रयत्न करता है; कुछ भी न देना पड़े, तो उसे रंज नहीं होता। आखिर व्यक्ति की यह धन कमाने की शक्ति भी प्रचलित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर ही अवलंबित है, न कि केवल उसकी इच्छा पर। अगर आर्थिक समानता का जमाना आये, जो कि कभी-न-कभी आने ही वाला है, तो हम आज धन कमाने की जिस शक्ति का अभिमान रखते हैं, वह पैसे के रूप में क्या फल दे सकेगी?

क्या आजीविका के लिए भी बुद्धि का उपयोग उचित है?

यह गंभीर बुनियादी सवाल है कि क्या बुद्धि का उपयोग पैसे के लिए करना उचित है? यह तो साफ दीखता है कि आर्थिक विषमता का एक मुख्य कारण बुद्धि का ऐसा उपयोग ही है। शोषण भी प्रायः उसीसे होता है। समाज में जो आर्थिक और सामाजिक विषमताएँ चल रही हैं और शोषण होकर अशांति होती है, उसे मिटाने के लिए जगत् में अनेक योजनाएँ अब तक सामने आयीं और इनमें कुछ पर अमल भी हो रहा है। पर अहिंसा के द्वारा यह जटिल प्रश्न हल करना हो, तो गांधीजी ने इस आशय का सूत्र बताया कि 'पेट भरने के लिए हाथ-पैर और ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान देने के लिए बुद्धि। ऐसी व्यवस्था हो कि हरएक को चार घंटे शरीर-श्रम करना पड़े और चार घंटे बौद्धिक काम करने का मौका मिले; और चार घंटों के शरीर-श्रम से इतना मिल जाय कि उसका निर्वाह चल सके!'

अभी समाज में यह चल रहा है कि बहुत-से लोग अपनी आजीविका शरीर-श्रम से चलाते हैं और थोड़े बौद्धिक श्रम से। जिनके पास संपत्ति अधिक है, वे आराम में रहते हैं। अनेक लोगों में श्रम करने की

आदत भी नहीं है। इस दशा में उक्त सूत्र का अमल होना दूर की बात है। फिर भी उसके पीछे जो तथ्य है, वह हमें स्वीकार करना चाहिए, भले ही हमारी दुर्बलता के कारण हम उसे ठीक तरह से न निभा सकें; क्योंकि आजीविका की साधन-सामग्री किसी-न-किसी के श्रम बिना बन ही नहीं सकती। इसलिए बिना शरीर-श्रम किये उस सामग्री का उपयोग करने का न्यायोचित अधिकार हमें नहीं मिलता। अगर पैसे के बल पर हम सामग्री खरीदते हैं, तो उस पैसे की जड़ भी अंत में श्रम ही है। इसके अलावा हम यह भी देख रहे हैं कि जब बुद्धि का उपयोग समाज-हित को छोड़कर अपने स्वार्थ के लिए किया जाता है, चाहे वह स्वार्थ व्यक्ति का हो, जाति का हो, समूह का हो या देश का हो, उससे दूसरों को हानि ही पहुँचती है। अणु-बम भी ऐसे ही कुछ बुद्धि के उपयोग से बना है।

कई भाइयों का कहना है कि जैसे शरीर-श्रम का मूल्य माना जाता है, वैसे बौद्धिक श्रम का भी मानना चाहिए। उसमें भी श्रम तो करना ही पड़ता है, भले ही हाथ-पैर न हिलाना पड़े। बौद्धिक काम करनेवालों को इतना समय भी मिलना संभव नहीं है कि वे उसके साथ-साथ शरीर-श्रम करके अपनी आजीविका चला सकें। शरीर-श्रम करने में भी बुद्धि का उपयोग करने से अधिक सफलता मिलती है। कुछ काम ऐसे ही हैं, जो विद्वान् लोगों द्वारा चलाये बिना चलेंगे भी नहीं। अलबत्ता जब तक आज की परिस्थिति चलती रहेगी और उसमें आमूल परिवर्तन नहीं होगा, तब तक इन दलीलों को महत्त्व देना होगा। परंतु हम यहाँ विचार बुनियादी सिद्धांत का कर रहे हैं। व्यावहारिक दृष्टि से उसमें ढिलाई भी सहन करनी पड़ेगी। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों की आमदनी में उतना फर्क क्यों हो, जितना आज है? अगर यह कहा जाय कि बुद्धि-जीवियों की आदतें, रहन-सहन ऐसी हैं कि अधिक आमदनी के बिना उनका निभ ही नहीं सकता, तो उनकी ऐसी आदतें क्यों बनीं? उन्हें

अब भी सुधारना संभव है या नहीं ? सुधारने का हम जी-जान से प्रयत्न क्यों न करें ? जब तक यह कमजोरी है, तब तक उन्हें कुछ अधिक सुविधा भले ही मिले, जैसे कि परिवार में भी कुछ कमजोरों को दी जाती है, तथापि आज की विषमता का समर्थन कैसे हो सकता है ?

धनिक ट्रस्टी बनें

कुछ भाई यह भी कहते हैं कि "हम अपनी संपत्ति का बहुत थोड़ा-सा अंश ही निजी काम में लगाते हैं, अधिकतर अंश का उपयोग बड़े-बड़े उद्योग-धंधों के, जो पूँजी के बल पर ही चल सकते हैं और जिनसे समाज के काम की चीजें बनती हैं, चलाने में ही किया जाता है। हमारे प्रयत्न के फलस्वरूप कई लोगों को काम मिलता और उनकी आजीविका चलती है। एक प्रकार से हम यह समाज की सेवा ही करते हैं। अगर व्यक्तियों के पास विपुल संपत्ति इकट्ठी न हो, तो यह कैसे हो सकेगा ? समाज के बहुत से व्यवहार रुक जायँगे।" गरीबों की आजीविका चलाने की जो बात कही जाती है, उसका उत्तर तो इतना ही काफी है कि जब उन गरीबों के बिना श्रीमानों के कारखाने या काम-काज चल ही नहीं सकते, तो यही मानना ठीक लगता है कि गरीब श्रमिक ही उन पर उपकार करते हैं, जिनकी सहायता से उन्हें मुनाफा होता है।

अन्य कथन में तथ्य तब होता, जब कि राजसत्ता या सहकारी-समितियों द्वारा ऐसे काम होना संभव नहीं होते। उसकी तफसील में यहाँ न जायँ। यहाँ तो धनिकों की दृष्टि से ही विचार करना है। जो धनिक भाई यह कहते हैं कि उनके अधिकतर प्रयास का फल समाज की सुविधा है, उनके लिए सीधा प्रश्न यह है कि यह आपका प्रयास स्वार्थ के लिए है या समाज-हित के लिए ? सही उत्तर तो यही होना चाहिए कि हेतु तो स्वार्थ का ही है, फिर दूसरों को कुछ लाभ मिल जाता है, तो उन दूसरों के भाग्य की बात। अगर यह उत्तर

आये कि हमारा हेतु देश-हित है, तो उनका स्वागत ही है। फिर हमारा कहना इतना ही रहेगा कि वे अपने सारे काम में असलियत लायें। महात्माजी भी तो यही कहते थे न कि धनिक लोग अपनी ज्यादा संपत्ति का उपयोग समाज के हित में ट्रस्टी के तौर पर करें। संपत्ति-दान-यज्ञ और भूदान-यज्ञ का भी आखिर आशय क्या है ? अपने पास आवश्यकता से जो कुछ अधिक है, उस पर अपना अधिकार न समझकर उसका उपयोग दूसरों के लिए करें।

दान में सदोषता

यह भी बहस चलती है कि धनिकों के दान से सामाजिक उपयोग के अनेक बड़े-बड़े कार्य होते हैं; जैसे कि अस्पताल, विद्यालय आदि। अगर व्यक्तियों के पास संपत्ति इकट्ठी न हो, तो समाज को ये लाभ कैसे मिलेंगे ? वास्तव में ऐसे काम करने के लिए राजसत्ता पड़ी है। जब सम्पत्ति थोड़े-से हाथों में बँधी न रहकर समाज में फैली रहेगी, तो सहकार-पद्धति से बड़े पैमाने पर ऐसे काम आसानी से चलने लगेंगे और उनका लाभ लेनेवाले, याचक या दीन की तरह नहीं, सम्मान-पूर्वक लाभ उठायेंगे। फिर भी धनिकों की दृष्टि से विचार किया जाय, तो करोड़ों की सम्पत्ति इकट्ठी कर उसमें से कुछ लाख दान में खर्च कर देने मात्र से दूसरों के हिस्से की चीज अपने पास बटोरने के दोष से वे मुक्त नहीं हो सकते। उचित या अनुचित रीति से बहुत-सा धन कमाकर उसका थोड़ा-सा हिस्सा दान कर देना पूरा प्रायश्चित्त नहीं है। जब हम चारों ओर धनिकों की दान की रीति देखते हैं, तो उसमें शुद्ध दान कहाँ तक है, इसका पता चलाना कठिन होता है। जहाँ देखो, वहाँ प्रायः ख्याति या स्वार्थ की दृष्टि ही अधिकतर देखने में आती है। कभी-कभी दान का सौदा व्यापार के सौदे से भी अधिक कठोर होता है। एक लाख का दान करके दस लाख की कीर्ति कमाने की इच्छा रहती है। शुद्ध सात्त्विक दान तो विरले ही होते हैं।

प्रारब्धवाद

अन्य देशों में और अन्य धर्मों में जो नहीं है, वह एक विशेष बात भारत में चली आ रही है। वह है प्रारब्धवाद। यह माना जाता है कि 'पूर्वजन्म में जो पुण्य किया है, उसके फलस्वरूप इस जन्म में संपत्ति और आराम मिलता है। जिन्होंने पाप किया है, उनको गरीबी और कष्ट भोगना पड़ता है। इस दशा में कोई किसीको दोष क्यों दे ?' ऐसी बहस तो चलती रहती है, पर उसमें क्या हमारी पूरी श्रद्धा है ? सच्ची श्रद्धा हो, तो खेद का कारण नहीं दीखता; क्योंकि पूर्वजन्म का इस जन्म से संबंध आता है, तो इस जन्म का सम्बन्ध आगामी जन्म से निस्संदेह आना ही चाहिए। इस जन्म में भाग्य से जो कुछ मिला तो मिला और न मिला तो न मिला, पर आगामी जन्म का प्रबन्ध करना तो हमारे हाथ में है। आगामी जन्म में सुख-आराम मिलाना हो, तो इस जन्म में हमें पुण्य-ही-पुण्य करना चाहिए। अगर यह बात व्यापक रूप से बन जाय, तो फिर और अधिक क्या चाहिए ? समाज में सुख-शांति दृढ़मूल होगी। परन्तु कोई भाग्य के भरोसे बैठा नहीं दीखता। हरएक जी-जान से खपकर सांसारिक झंझटें बढ़ा रहा है। बहुतेरे सम्पत्ति जोड़ने में पाप-पुण्य का खयाल रखना भूल गये हैं। व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार बढ़ने की शिकायत रात-दिन हो रही है, आखिर यह किस बात का द्योतक है ?

यह मानना भी गलत होगा कि यह भ्रष्टाचार या पाप गरीब ही करते हैं, धनिक नहीं करते। वास्तव में धनिकों का पाप कम नहीं है। जब धनिक लोग भी धन कमाने में पाप करने से डरते नहीं, तब हम उनका यह प्रारब्धवाद सचमुच दिल से है, यह कैसे मानें ? अगर यह प्रारब्धवाद चलाना ही है, तो गरीब लोग भी यह कह सकते हैं कि अब हमारे भी भाग्य ने पल्टा खाया है और हमारा प्रारब्ध हमें सुझा रहा है कि श्रीमानों

की सम्पत्ति लूटकर अपना भाग्य सुधारने में वाधा नहीं है। इस प्रकार प्रारब्धवाद दुधारी तलवार वन सकती है; और चूँकि धनिकों की अपेक्षा गरीबों की संख्या बहुत अधिक है, इसलिए धनिकों के लिए वह खतरनाक है। गरीबों को उनके भाग्य के भरोसे छोड़ना भयानक है, लम्बे समय तक उनकी अवहेलना हुई है। अब लक्ष्मी-नारायण की जगह दरिद्रनारायण की उपासना होनी चाहिए।

स्वार्थ का स्थान ?

अर्थशास्त्री कहते हैं कि व्यक्ति के स्वार्थ के लिए अवसर रखे बिना देश में उत्पादन और सम्पत्ति नहीं बढ़ सकेगी, किफायत भी नहीं होगी। माना कि मनुष्य में स्वार्थ-वृत्ति स्वाभाविक है। फिर भी अगर धनिक लोग खुद स्वार्थ की बहस करते हैं, तो उनके लिए इतना ही उत्तर काफी है कि अगर समाज के और व्यक्ति के स्वार्थ में विरोध हो, तो व्यक्ति के स्वार्थ को महत्त्व नहीं दिया जा सकता। अर्थशास्त्रियों की बहस में विपुल पूँजी का संग्रह अनिवार्य मान लिया गया है, पर सर्वोदय-समाज में पूँजी की अपेक्षा मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है। विकेन्द्रित उत्पादन और क्षेत्र-स्वावलम्बन में मनुष्य-बल और शरीर-श्रम का ही महत्त्व है। थोड़ी-सी पूँजी काफी है। अगर कुछ चीजों के लिए बड़े कारखाने चलाने की जरूरत हो, तो वे सरकार की ओर से चल सकते हैं। देश में आज सरकार की ओर से उद्योग-धंधे चलाने लायक स्थिति न दीखे, तो भी वैसी स्थिति लाये बिना देश का कल्याण नहीं है। अब तक का अनुभव बताता है कि पूँजी गरीबी या बेकारी की समस्या हल नहीं कर सकी है। नैतिक दृष्टि से भी स्वार्थ-वृत्ति का पोषण करना योग्य नहीं है। बहुत करके स्वार्थ का अर्थ होता है, परार्थ की हानि। उसीमें से स्पर्धा बढ़ती है, जिसके फलस्वरूप कुछ थोड़े-से लोग ही लाभ उठा सकते हैं, बहुसंख्यकों को तो हानि ही पहुँचती है। मानवोचित सहयोग की जगह जंगल का कानून या मत्स्य-न्याय

चलता है। आखिर यह देखना है कि समाज का कल्याण किस वृत्ति से होगा। अगर समाज में स्वार्थ-वृत्ति के लोग अधिक हों, तो क्या कल्याण की आशा रखी जा सकती है? समाज तो परोप-कार-वृत्ति के बल पर ही ऊँचा उठ सकता है। संपत्ति बढ़ाने के लिए स्वार्थ का आधार दोषास्पद है।

दाता को दीन बनना पड़े तो ?

अर्थ-नीति के बारे में कुछ भाई अमेरिका का उदाहरण पेश करते हैं। भारत को कल्याणकारी (वेल्फेयर) राज्य बनाने की बात चल रही है। कल्याणकारी राज्य का अर्थ यह समझा जाता है कि सब तरह के दुर्बलों को राज्यसत्ता द्वारा मदद मिले, अर्थात् बड़े पैमाने पर कर वसूल करके उससे गरीबों को सहारा दिया जाय। भारत जैसे दरिद्र देश में क्या इस बात का बन आना संभव है? इसके अलावा स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में राज्य की प्रणाली कल्याणकारी हो, यह बात तो कुछ समझ में आ सकती है, परंतु आर्थिक बातों में अर्थात् पेट भरने के विषय में मनुष्य राज्य के भरोसे रहे, यह बात कहाँ तक ठीक है? प्राथमिक आवश्यकताओं के बारे में मनुष्य अपने पैरों पर खड़े रहने के लायक हुए बिना स्वतन्त्र नहीं रह सकता, किसी-न-किसी प्रकार उसे पराधीन रहना होगा।

अमेरिका जैसे देश का उदाहरण हमारे काम नहीं आ सकता। वहाँ सारे जगत् से सम्पत्ति बटोरी जाकर इकट्ठी हुई है, गरीबों को भी काफी आराम मिल जाता है। वह मिसाल आज की दशा में या जहाँ तक भविष्य देख सकते हैं, वहाँ तक हमारे किस काम की? हमारे यहाँ हर साल कहीं-न-कहीं करोड़ों लोगों को अकाल की-सी दशा में से गुजरना पड़ता है। अनाज के भंडार भरे रहते हुए भी कुछ प्रान्तों में बड़ी तादाद में लोगों को भुख-

मरी सहन करनी पड़ती है। गरीबों के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नहीं रहता। काम करने का अवसर नहीं है, इसलिए पैसा नहीं मिलता। धनिकों के केन्द्रित उद्योगों के कारण बेकारों को ग्रामोद्योग मुहैया नहीं किये जा सकते। यह सही है कि अकाल की-सी दशा में कल्याणकारी राज्य की तरह सरकार और दानी लोग उनको राहत पहुँचाने की कुछ व्यवस्था करते हैं। पर क्या वह पर्याप्त है ?

उस दृश्य का चित्र आँखों के सामने लाइये कि कुछ लोग भूखों के बीच कांजी का वितरण कर रहे हैं और कुछ कांजी ले रहे हैं; कुछ दयालु कपड़ा बाँट रहे हैं और कुछ अध-नंगे कपड़ा पा रहे हैं। ऐसे फोटो अखबारों में छपते भी हैं। क्या ये दृश्य मनुष्य के हृदय में व्यथा पहुँचानेवाले नहीं हैं ? एक व्यक्ति चीज बाँटने की दशा में रहे और दूसरा लेने की विपन्नावस्था में! इसका ठीक मर्म तो तभी समझ में आयेगा, जब बाँटनेवालों को कभी ऐसी चीजें माँगने के लिए दीनता से अपना हाथ पसारना पड़े। स्वराज्य मिल जाने के बाद भी यह कब तक चलता रहेगा ? हरएक को यथोचित खाना, कपड़ा और मकान मिल जाने के बाद अगर कुछ बचे, तो धनिक लोग भले ही उसे अपने पास रखें। उसमें भी आपत्ति तो है ही। पर जब तक गरीबों की सँभाल ठीक-ठीक नहीं होती है, तब तक धनिकों को बेचैन रहना ही चाहिए। महलों में रहनेवालों को सोचना चाहिए कि उनके महलों के सामने ही फुट-पाथ पर बे-घर-बारवालों को रात-दिन अपना जीवन क्यों बिताना पड़ता है ? मोटर में बैठकर जानेवालों को सोचना चाहिए कि उसी सड़क पर से साठ-सत्तर बरस के स्त्री-पुरुषों को सिर पर लकड़ी की मोली या घास का गट्ठर लेकर कोसों पैदल क्यों चलना पड़ता है ? ऐसी बातों का विचार

करते रहने से अपने पास अधिक संपत्ति रखने का अधिकार है या नहीं, इस प्रश्न पर काफी रोशनी पड़ेगी।

देश को परिवार समझें

मानिये कि एक परिवार में पाँच व्यक्ति हैं, उनको पेट भरने के लिए चार सेर अनाज की जरूरत है। अगर पूरा चार सेर अन्न मिल जाता है, तो सब पेटभर खायेंगे। अगर तीन ही सेर मिले, तो क्या करेंगे ? क्या एक-दो को भूखा रखकर बाकी सब पेटभर खा लेंगे ? परिवार में ऐसा नहीं होता। अगर जरूरत से कम मिलता है, तो सभी थोड़ा-थोड़ा कम लेकर निभा लेते हैं। बालक और कमजोरों का खयाल पहले किया जाता है। सामाजिक दृष्टि से यही न्याय समाज के सब व्यक्तियों पर लागू होना चाहिए। राज्यकर्ताओं की और समाज की दृष्टि में सारा देश एक परिवार है। अगर देश में संपत्ति पर्याप्त है, तो सब पूरी भोगें। सम्पत्ति कम रहने की दशा में हरएक को कुछ-न-कुछ कष्ट सहने को, त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। धर्म भी यही बात सिखाता है। हमारी जबान पर तत्त्वज्ञान के विचार समय-बे-समय आते रहते हैं—अपने-पराये का भेद गलत है, सबमें आत्मा समान है, ईश्वर ने सबको पैदा किया है, हम सब भाई-बहन बराबर हैं आदि। इन सही विचारों से आचरण का सदा मेल बैठाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

शरीर-श्रम से नफरत

शरीर-श्रम के बारे में हमारी सामाजिक विचारधारा में एक बड़ा भारी दोष है, जो शायद दूसरे देशों में नहीं मिलेगा। हम शरीर-श्रम करना नहीं चाहते। इतना ही नहीं, वरन् उसे नफरत की नजर से देखते हैं और जिनको शरीर-श्रम करना पड़ता है, उन्हें

समाज में हीन दर्जे का मानते हैं। श्रीमान् या गरीब, कोई भी श्रम करना नहीं चाहता। धनिक अपने पैसे के बल से नौकरों द्वारा अपना काम चला लेता है। गरीब भूख की लाचारी से श्रम करता है। हमें यह वृत्ति बदलनी चाहिए। शरीर-श्रम केवल प्रतिष्ठा स्थापित कर संतोष नहीं मानना है, उसके लिए हमारे दिल में प्रीति होनी चाहिए। धनिक और मध्यम वर्ग के लोगों को दूसरों के लिए शरीर-श्रम का उदाहरण पेश करना चाहिए।

आर्थिक विषमता हटे विना चारा नहीं

पहले बताया जा चुका है कि शरीर-श्रम के बिना संपत्ति नहीं बनती, अर्थात् धनिकों के पास जो संपत्ति इकट्ठी होती है, वह गरीबों के शरीर-श्रम का ही फल है। इसके अलावा गरीबों के सहयोग के बिना धनिक लोग संपत्ति कमा नहीं सकते, अपने पास रख नहीं सकते और उसका उपयोग या उपभोग भी नहीं कर सकते। अतः न्याय की दृष्टि से इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि आवश्यकता से अधिक संपत्ति रखने का और निज के लिए कमाने का किसी व्यक्ति को अधिकार नहीं है। यह प्रश्न उठ सकता है कि आवश्यकता कितनी मानी जाय? मनुष्य-मनुष्य के नाते इसमें बहुत फर्क नहीं पड़ना चाहिए। बीमार और स्वस्थ, बालक और युवक और अपनी-अपनी विभिन्न आदतों के कारण कुछ फर्क जरूर पड़ सकता है और उसे मानना भी चाहिए। अगर न्याय की दृष्टि से देखें, तो आवश्यकताओं के बारे में निर्णय करना मुश्किल नहीं है। परन्तु समस्या तब जटिल होती है, जब अपना स्वार्थ, सांसारिक मोह, धन में आसक्ति आदि दोष खेल खेलने लगते हैं। आवश्यकता के प्रश्न पर यहाँ अधिक गहरे जाने की जरूरत नहीं है। हमारे लिए इतना काफी है कि आज की सामाजिक और आर्थिक घोर विषमता न्यायोचित नहीं है; उसे बदलना चाहिए। यह जमाने की माँग

टाली नहीं जा सकेगी। इस प्रकार की विषमता हर जगह चलती रही है, हजारों वर्षों तक चली। साधु-संतों ने, सब धर्मवालों ने सदा आदेश दिया है कि गरीबों का खयाल करो, अपने पास जो ज्यादा है, उसे दूसरों को दो। दान, धर्म, खैरात की प्रणाली चल रही है, तथापि गरीबी का प्रश्न हल नहीं हुआ। ऐसे उपायों से हल होता दीखता भी नहीं।

अब कुछ समय से जगत् के सामने दया की जगह समता का विचार आया है। पूरी सोलह आना समता आना संभव न हो, तथापि आज की विषमता तो कदापि सहन न होनी चाहिए। यह विषमता कैसे दूर हो? कहीं-कहीं लोगों ने हिंसा का मार्ग ग्रहण किया। उसमें से अनेक बुराइयाँ निकलीं, जो अब तक दूर नहीं हो सकी हैं। विषमता दूर करने में कानून भी कुछ मदद देता है। भारत में कुछ अंश में कानून का ऐसा चक्र चालू भी हो गया है, परन्तु कानून से मानवोचित गुणों का, सद्भावना का विकास नहीं हो सकता। महात्माजी ने हमें जो अहिंसा की विचारधारा दी है, उसका हमने कुछ अनुभव भी कर लिया है। भारत की परम्परा का खयाल करते हुए यह सम्भव दीखता है कि विषमता का प्रश्न बहुत कुछ हद तक अहिंसा के इस मार्ग से हल हो सकना सम्भव है। इसमें धनिकों से पूरा सहयोग मिलना चाहिए। उनके दिल में परिवर्तन होना चाहिए। इसका असर कानून बनाने की शक्ति पर भी पड़ेगा और हमारे सब कार्य-क्षेत्रों में, समाज में सद्गुणों का विकास होगा। जैसे राजनैतिक स्वराज्य का प्रश्न काफी हद तक अहिंसा के मार्ग से सुलझा, वैसे ही आर्थिक और सामाजिक समता का प्रश्न भी भारत में अहिंसा के मार्ग से सुलझेगा, ऐसी हम श्रद्धा रखें। विनोबाजी द्वारा चलाये हुए भूदान-यज्ञ और संपत्ति-दान-यज्ञ में हम सब छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, तहेदिल से सहयोग दें।

गरीबों से भी दान क्यों ?

भूदान-यज्ञ में बड़े जमींदारों से विशेष अधिक मात्रा में जमीन मिलने की आशा रखी गयी है, साथ ही थोड़ी जमीनवालों से भी कुछ-न-कुछ जमीन माँगी जा रही है। अनुभव यह रहा कि तुलनात्मक दृष्टि से थोड़ी जमीनवालों की उदारता विशेष रूप से प्रकट हुई। भूदान की तरह संपत्ति-दान में भी छोटे-बड़े, सबसे अपेक्षा रखी गयी है कि वे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अपनी आमदनी का कुछ हिसा दें। यह शंका की जाती है कि जिनके पास पाँच-दस एकड़ से ज्यादा जमीन नहीं है, उनसे भी क्यों माँगी जा रही है ? वैसे ही जिनकी आमदनी इतनी कम है कि उनको गरीबी से भी गुजर करना मुश्किल है तथा यह चिन्ता रखनी पड़ती है कि किसी प्रकार थोड़ी-सी भी अधिक आमदनी हो, उनसे भी सम्पत्ति-दान में कुछ-न-कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा क्यों रखी जा रही है ? एक तो दान देने में किसी पर जबरदस्ती नहीं है, वह स्वेच्छा पर अवलम्बित है। देनेवाला अगर प्रसन्नता से देता है, तो दान क्यों न लिया जाय ? यज्ञ में हविर्भाग देने के लिए गरीब-अमीर, सबको निमन्त्रण है। ऐसे विश्व-यज्ञों में सबका योग आवश्यक है। बहुत दफा जब गरीब लोग दान देने का सिलसिला शुरू कर देते हैं, तो फिर धनिक भी उसमें शामिल हो जाते हैं। वास्तव में इस विषय में तो धनिकों को नेतृत्व करना चाहिए। पर उनको जो जमीन या सम्पत्ति देनी पड़ेगी, उसकी तादाद बड़ी होने के कारण और अधिक चीज में आसक्ति भी अधिक होने के कारण अपने दिल को समझाकर निर्णय करने में कुछ देर लगती है। अतः गरीब हो या अमीर, सबको उत्साहपूर्वक दान करने को तैयार रहना चाहिए।

इन यज्ञों में हविर्भाग देने के लिए सबको निमंत्रण देने का यह भी एक कारण है कि अभी समाज में स्वार्थवृत्ति बढ़कर जो भ्रष्टाचार

५

चल रहा है, उस पर कुछ पाबंदी लगे। जो इन यज्ञों में हिस्सा लेगा, वह अपने दिल में शुद्धता-अशुद्धता का विवेक जरूर रखेगा। स्वार्थ-वृत्ति गरीब, अमीर, सबमें है। जरूरत है कि सबका मानस सुधरे। स्वार्थ-वृत्ति घटे बिना समाज का उत्थान नहीं होगा। दान में सब लोग हिस्सा लेंगे, तो राष्ट्रीय जीवन शुद्ध होगा। छोटे-बड़े, सबका एक-दूसरे पर असर पड़ता है। अवगुणों की तरह गुण भी मनुष्य दूसरों को देखकर सीखता है। सब आर्थिक समता, शरीर-श्रम और स्वावलम्बन का महत्त्व समझें; हर व्यक्ति दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता रखे; एकता की भावना बढ़े; सबका स्वार्थ घटे आदि गुणों के विकास के लिए आवश्यकता है कि छोटे-बड़े, सब इन यज्ञों में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार योग दें।

धन की लालसा कम हो

वास्तव में गरीबों को तो मदद ही पहुँचनी चाहिए। ये यज्ञ उनको मदद पहुँचाने के लिए ही हैं। फिर भी उनसे भी किंचित् ही क्यों न हो, कुछ-न-कुछ माँगा जा रहा है। क्योंकि उनमें भी धन की लालसा का कम होना आवश्यक है। आज तो गरीबों को भी हमारी आर्थिक-व्यवस्था का मूल दोष मालूम नहीं है। अगर उन्हें धनिक होने का मौका मिले, तो वे उसका लाभ उठाना चाहेंगे। कोई धनिक हो या गरीब या मध्यमवर्गीय, सबको धनिक बनने की लालसा सता रही है। जो धनिक नहीं हैं और धनिकों को दोष देते रहते हैं, वे भी धनिक बनने की लालसा तो रखते ही हैं। चारों ओर धन के लिए दौड़-धूप मची हुई है। कारखानों में मालिक और मजदूरों के बीच सदा झगड़े होते रहते हैं। गरीबों और मज-दूरों की दशा सुधारना तथा उनकी आय बढ़ाना आवश्यक तो है ही, परन्तु उनका ध्यान अपना सुधार करने की अपेक्षा अधिक पैसा कमाने की ओर ही अधिक है। देश में खुद की अपेक्षा दूसरे

अधिक गरीब लोग भी हैं और उन कारखानों के कारण ही दूसरों में बेकारी बढ़ रही है, इस ओर उनका ध्यान नहीं है। मालिकों की तरह मजदूर भी कारखानों में अधिकाधिक मुनाफे का स्वागत करते हैं; क्योंकि उस मुनाफे में से उनको भी कुछ हिस्सा मिल जाता है। इस तरह कारखानों में चीजों का उपयोग करनेवाले गरीबों के हित की अपेक्षा मुनाफे की दृष्टि ही अधिक रहती है। समाज के सब वर्गों में पैसा कमाने की लालसा को लगाम लगाने की जरूरत है। इस तत्त्व को समझकर हरएक में त्याग-वृत्ति का विकास होना चाहिए। ये यज्ञ इसमें मदद करेंगे। समझ-बूझकर अंतःकरण में अगर ऐसा परिवर्तन होगा और चारों ओर ऐसी हवा फैलेगी, तो धनिक लोग भी उससे अछूते नहीं रह सकेंगे।

संपत्ति-दान-यज्ञ में गरीब योग क्यों दें ?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत बहुत गरीब देश है। यहाँ धनिक कहलाने योग्य तो लाखों में एक-आध ही मिलेगा। खा-पीकर सुखी तो शायद फी सदी दस ही हों। बाकी नब्बे प्रतिशत लोग गरीब हैं। ये गरीब लोग प्रायः उत्पादक श्रम करके जैसे-तैसे मुश्किल से अपना निर्वाह कर पाते हैं। उनको अपना जीवन काफी कष्ट में बिताना पड़ता है। अगर देश में गरीबी है, तो सबको गरीबी सहन करने को तैयार रहना चाहिए। यह न्याय की बात नहीं है कि एक ही देश में रहनेवाले चंद लोग तो ऐश-आराम और चैन में रहें और बहुत सारे गरीबी की यातना भोगते रहें। इसके अलावा, जब स्थिति यह है कि धनिकों की अमीरी गरीबों के शरीर-श्रम पर ही अवलंबित है, तो यह अन्याय असहनीय होना चाहिए।

यज्ञ में सबका हविर्भाग

ऐसे एक उद्देश्य को लेकर विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ तथा सम्पत्ति-

दान-यज्ञ चलाये हैं। इस उद्देश्य की सफलता के लिए आवश्यक है कि इन यज्ञों को आंदोलन का स्वरूप प्राप्त हो और वे बड़े व्यापक पैमाने पर चलें। अगर फी सदी नब्बे गरीब लोग इन यज्ञों में शरीक नहीं होते हैं, तो विचार व्यापक नहीं हो सकता और समाज की विचारधारा भी नहीं बदल सकती। इसलिए अमीर-गरीब, सबको इन यज्ञों में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार आहुति डालनी ही चाहिए।

सब कैसे शामिल होंगे ?

त्याग यज्ञ का मुख्य अङ्ग है। स्वार्थ-त्याग किये बिना देश ऊँचा नहीं उठ सकता। हम समाज-हित के लिए अमीरों को त्याग करने को कहें और नब्बे फी सदी गरीब लोग कुछ भी त्याग न करें, तो गरीबों को धनिकों से त्याग करने के लिए कहने का हक नहीं पहुँचता। खुद स्वार्थी बने रहकर दूसरों को त्याग करने के लिए कहने से कोई ठीक परिणाम नहीं निकल सकता। हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि देश में केवल धन-सम्पत्ति का हस्तांतरण नहीं करना है, मनुष्य का स्वार्थ और लोभ भी छुड़ाना है। उसके अन्तःकरण की शुद्धि करनी है, ताकि उसके पास जो कुछ साधन-सामग्री है, उसका वह सदुपयोग करता रहे, समाज को अपने हृदय में स्थान दे, दूसरों को सहयोग दे और उनको मदद करने की वृत्ति बढ़ाये। बहुसंख्यक गरीब लोगों द्वारा इन आंदोलनों में भाग न लेने से ऐसी हवा निर्माण नहीं हो सकती, जिससे परिस्थितिवश सबको इनमें शामिल होना पड़े। इसलिए कार्यकर्ताओं का यह विशेष प्रयत्न होना चाहिए कि गरीब भी इन आंदोलनों में हाथ बटायें।

समाज के आधार : श्रमिक

लेकिन जैसे विद्वान् लोग अपनी विद्या का मूल्य पैसे में आँकते हैं, वैसे श्रमजीवी भी अपने श्रम का मूल्य पैसे-टके में ही आँक रहे हैं।

परिणाम यह हुआ है कि पैसे के लिए सबकी घुड़दौड़ हो रही है। श्रमिक भी कर्तव्यपरायण नहीं रहा है। श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाना उसीके हाथ है। जिस श्रम में समाज को जिंदा रखने की क्षमता है, उस श्रम का सही मूल्य अगर वह जान लेगा, तो देश में आर्थिक क्रान्ति होने में देर नहीं लगेगी। अगर गरीब लोग, जो प्रायः श्रमजीवी ही हैं, भूदान और सम्पत्ति-दान-यज्ञ का सिद्धान्त समझकर दिल से उनमें हिस्सा लेंगे, तो उनका तेज प्रकट होगा और उनको समाज में उनके योग्य महत्त्व का स्थान प्राप्त होगा। उन्हें अपनी शक्ति का भान तो हो, पर अगर उनमें कर्तव्य की जाग्रति न हो, तो वह कर्तव्यविहीन शक्ति उनकी आसुरी सम्पत्ति होगी, जिससे समाज को आज भी हानि पहुँच रही है, भविष्य में भी पहुँचती रहेगी। यज्ञों में भाग लेने से उनकी त्याग-वृत्ति बढ़ेगी और उन्हें कर्तव्य का भी ठीक-ठीक भान होगा।

गरीब दूसरे गरीब का खयाल करें

गरीबी-गरीबी में फर्क है। कुछ खाने तक को न मिलने के कारण मजबूर होकर दर-दर भटक रहे हैं। कुछ अधभूखे रहकर ही जिंदा रहते हैं, तो कुछ अपना काम तंगी से चलाते अथवा किसी प्रकार निभा लेते हैं। जो इस प्रकार दुःख भोग रहे हैं, उनको गरीबी के अनुभव के कारण दूसरे गरीबों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। परंतु प्रायः हरएक दूसरे की कोई परवाह न कर अपने ही स्वार्थ में लगा है। अपने-अपने भिन्न-भिन्न कार्य-क्षेत्रों के कारण श्रमजीवियों के समाज में अनेक तबके खड़े हो गये। उनमें से कुछ का जहाँ कुछ संघटन हो गया है, जैसे कि बड़े कारखाने, रेल्वे, पोस्ट-ऑफिस आदि क्षेत्रों में, वहाँ वे हड़ताल आदि द्वारा समाज को अड़ाकर अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाने की सदा कोशिश करते रहते हैं। देहात में बसनेवाले करोड़ों गरीब भूमिहीनों की ओर उनका ध्यान नहीं जाता, जो उनसे कितने ही अधिक गरीब हैं और कष्ट भोग रहे हैं। देश की सम्पत्ति

तो मर्यादित है। अगर कुछ लोगों की ही आमदनी बढ़ती रहे, तो दूसरों की गरीबी बढ़ेगी। अमीर लोग भी अधिक धन बटोरते हैं, तो उसका भी परिणाम यही होता है। इसलिए जिनके पास जो कुछ है—थोड़ा या अधिक, उनका यह कर्तव्य है कि वे अपने से जो अधिक गरीब हैं, उनकी ओर ध्यान दें और उनकी मदद करें। ऐसा हुए विना समूचे समाज का हित नहीं सध सकता।

गरीब का दान अपनी मर्यादा में ही

ये यज्ञ गरीबों की भलाई के लिए हैं। लेकिन उनका कल्याण तभी हो सकता है, जब हर गरीब दूसरों की भलाई सोचे और खुद भी कुछ त्याग करे। चूँकि गरीबों के पास विशेष कुछ है नहीं, इसलिए उनके त्याग की मात्रा नाममात्र की ही हो सकती है। परन्तु वह त्याग, दिल में समाज को स्थान देकर समझ-बूझकर होने के कारण, विशेष फलदायक होगा। जो धनिक होने के कारण विशेष बोझ सहन कर सकते हैं, उनके त्याग की मात्रा विशेष रूप में होनी चाहिए, पर दूसरों के लिए तो अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार ही वह हो सकती है।

सम्पत्ति-दान में फिलहाल साधारण तौर पर आमदनी के या गृहस्थी-खर्च के छठे हिस्से की माँग की जा रही है। लेकिन यह कोई टैक्स नहीं है। दाता अपनी शक्ति के अनुसार कम-वेशी हिस्से का संकल्प कर सकता है। हमारे अर्थशास्त्री अभी भारत में फी व्यक्ति पीछे मासिक बीस रुपये आमदनी आँकते हैं। यह आँकड़ा औसत का है। अर्थात् कुछ की आमदनी इससे भी बहुत कम है और कुछ की बहुत ज्यादा। परिवार की औसत-संख्या पाँच व्यक्ति मानकर, एक परिवार की आमदनी मासिक रुपये सौ गिन लें और सम्पत्ति-दान में प्रति रुपये पीछे आध आने का संकल्प किया जाय, तो गरीब-परिवार को उस दान के लिए महीने भर में तीन रुपये दो आने ही खर्च करने होंगे। ऊपर लिखे मुताविक यज्ञ के महत्त्व का खयाल करते हुए क्या

गरीब के लिए इतनी-सी रकम कोई बड़ा बोझ हो सकता है ? हम देखते हैं कि आजकल गरीब लोग भी कुछ-न-कुछ फिजूल खर्च करते ही रहते हैं। होटल, चाय, तम्बाकू, सिनेमा आदि में उनका कितना ही पैसा बरबाद होता रहता है। ऐसे खर्चों में से थोड़ी किफायत की जाय, तो वे सम्पत्ति-दान के लिए थोड़ी-सी रकम आसानी से बचा सकते हैं और उनके व्यसन भी कुछ अंश में घट सकते हैं। समाज की विचारधारा में परिवर्तन करने के खातिर उनको इतना-सा त्याग करने के लिए जरूर तैयार होना चाहिए। अगर उनको ठीक तरह समझाया जाय और उनको जँच जाय, तो यह काम आसान है। इतनी बड़ी तादादवाले गरीब लोग यज्ञ का सिद्धान्त यदि अपना लें, तो फिर सारे समाज का धन-सम्पत्ति सम्बन्धी विचार बदलने में शंका नहीं रह सकती। गरीब को चाहिए कि वह उत्साह और हर्ष के साथ इन यज्ञों में शरीक हों।

विद्यार्थी भी शरीक हों

हाईस्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थियों से भी अपेक्षा है कि वे सम्पत्ति-दान-यज्ञ में योग दें। उनको इन यज्ञों का प्रचार-कार्य और श्रमदान तो करना ही चाहिए, साथ-ही-साथ यज्ञ के निमित्त से समाज के लिए अपनी ओर से कुछ खर्च भी करते रहना चाहिए। शायद वे कहें कि हम कोई कमाई तो करते नहीं हैं, केवल खर्च-ही-खर्च करते हैं। फिर भी उनसे अपेक्षा है कि वे अपने विद्यार्थी-काल में भी कुछ-न-कुछ नियमित रूप से त्याग करने की आदत बना लें। अगर वे यह समझते हों कि समाज-सेवा का काम विद्या हासिल करने के बाद गृहस्थ-जीवन में शुरू हो, तो उनका यह समझना गलत होगा। अनुभव तो यह है कि जिन्होंने विद्यार्थी-जीवन में समाज-सेवा का काम किया है, आगे चलकर उनमें से ही कुछ समाज-सेवा का काम चालू रखते रहे हैं। शिक्षा-काल में विद्यार्थी-जनों का उत्तम और ऊँचे दर्जे के

विचारों से सम्पर्क आता है, वे उनसे प्रभावित भी होते हैं। भविष्य में समाज-सेवा करने के भाव भी उनके दिल में पैदा होते हैं। जिन भावनाओं की आचरण से दृढ़ता और पुष्टि नहीं होती, वे भाव आगे टिक नहीं पाते और प्रपंच में फँस जाने के बाद तो वे भाव प्रायः मिट भी जाते हैं। इसलिए विद्यार्थी-जीवन में ही आचरण से सद्‌गुणों का पोषण करना चाहिए। यह बात भविष्य पर छोड़ने लायक नहीं है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि विद्यार्थी सम्पत्ति-दान-यज्ञ में किस प्रकार योग दे सकते हैं। उन्हें कोई आमदनी तो है नहीं, फिर भी खर्च तो उन्हें करना ही पड़ता है। उसी खर्च के अनुपात में वे संपत्ति-दान का संकल्प कर सकते हैं। स्कूल-कॉलेजों के खर्च काफी बढ़ गये हैं, फिर भी जीवन में सादगी लायी जाय, तो काफी किफायत हो सकती है। इसलिए विद्यार्थी को अपने अध्ययन-काल में जो कुछ खर्च करना पड़ता है, उसका एक छोटा-सा हिस्सा, जैसे कि रुपये पर दो पैसे संपत्ति-दान-यज्ञ में खर्च करने का संकल्प वे कर सकते हैं। अब भी कहीं-कहीं विद्यार्थी अकाल, बाढ़ आदि संकटों के समय कुछ-न-कुछ सहायता, किसी-न-किसी रूप में देते हैं, दूसरे गरीब विद्यार्थियों की मदद भी करते हैं। पर यह काम कभी-कभी और नैमित्तिक रूप से होता है। हम चाहेंगे कि खर्च का एक हिस्सा नियमित रूप से और जीवन के एक अंग के रूप में संपत्ति-दान-यज्ञ में खर्च करने का संकल्प हो, जो बाद में काम-धन्धे में लगने पर आमदनी के यथोचित हिस्से में परिणत हो जाय।

यज्ञों का उद्देश्य : अहिंसक-समाज

भूदान-यज्ञ के बाद संपत्ति-दान-यज्ञ शुरू हुआ। श्रमदान-यज्ञ की आवाज भी गूँज रही है। बुद्धिदान-यज्ञ का भी नाम कभी-कभी सुनाई देता है। अब जीवनदान-यज्ञ भी चल पड़ा है। क्या ये सब चीजें भिन्न-भिन्न हैं? जीवनदान-यज्ञ की बात कुछ अलग है, पर

बाकी सब यज्ञ एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। उनमें से किसी एक से या सब मिलाकर भी कोई एक अंतिम वस्तु सिद्ध नहीं होती। वे साधनमात्र हैं। साध्य वस्तु क्या है? भूतकाल में मानव-समाज में सुख-शांति स्थापित करने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। उनसे समय-समय पर कुछ हद तक लाभ भी हुआ, तथापि संतोष होने लायक दशा प्राप्त नहीं हुई। इसके लिए अब भी प्रयत्न जारी है और भविष्य में भी जारी रहेगा। कई देशों में हिंसा के आधार पर नये समाज की रचना का प्रयत्न हुआ और हो रहा है। कुछ देशों ने कानून का सहारा उपयुक्त समझा। वास्तव में समाज कैसा हो, इसके कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट चित्र विचारकों के सामने हैं। कुछ लोग ऐसा समाज चाहते हैं कि जिसमें किसीका शोषण न हो और शासन कम-से-कम हो। उसमें व्यक्ति यथासंभव स्वतंत्र और स्वावलंबी रहकर अपना विकास कर सके और श्रमनिष्ठ हो। आर्थिक और सामाजिक विषमता हटे। स्वार्थ की जगह परार्थ और स्पर्धा की जगह सहयोग चले एवं संयुक्त परिवार में जैसे एक-दूसरे का भाई-चारा चलता है, वैसा ही व्यवहार सारे समाज में चले। ऐसे समाज को हम 'सर्वोदयी' या 'अहिंसक' समाज कह सकते हैं या 'रामराज्य' भी। पर प्रश्न यह है कि ऐसा समाज कैसे बन सकेगा? क्या केवल भौतिक परिस्थिति बदलने से यह बात साध्य हो सकेगी? समाज व्यक्तियों का बनता है। अगर व्यक्ति अर्थात् मनुष्य न बदले, तो केवल भौतिक परिवर्तन से क्या शाश्वत सुख-शांति प्राप्त हो सकेगी? जिसके हाथ में भौतिक चीजें रहेंगी, उसके खुद के सुधरे बिना उन चीजों का क्या समाज-हित में ठीक उपयोग हो सकेगा? हिंसा और कानून से केवल भौतिक परिवर्तन हो सकता है, मनुष्य के हृदय का परिवर्तन और चीज है। अहिंसक-समाज की रचना के लिए मनुष्य के हृदय में सही परिवर्तन होना आवश्यक है अर्थात् उसमें मानवता आनी चाहिए। भूदान आदि यज्ञ ऐसे समाज की रचना के और मनुष्य के हृदय-परिवर्तन

के प्रयत्न में सही कदम हैं। और भी अनेक बातें करनी होंगी, पर इन यज्ञों के बिना नवसमाज-रचना का उद्देश्य सफल होना मुश्किल है।

क्या यह सम्भव है ?

प्रश्न पूछा जाता है और वह स्वाभाविक है कि क्या ऐसे समाज का हो सकना कभी सम्भव है ? हजारों वर्षों में अनेक साधु-सन्तों ने प्रयास किया, सब धर्मवालों ने प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नहीं मिली। क्या कभी बहुजन-समाज इतना सुधर जायगा कि सब अपना-अपना व्यवहार भाईचारे की दृष्टि से करते रहेंगे ? क्या समझाने मात्र से इतना शुभ परिवर्तन हो सकेगा ? क्या सम्पत्तिदान-यज्ञ में बहुत बड़ी तादाद में लोग ईमानदारी से साथ देंगे ? रचनात्मक कार्यकर्ताओं के दिल में भी ऐसी ही शंकाओं का उठना सम्भव है। अगर हम दिल में शंका रखकर काम करते रहेंगे, तो इस महान् कार्य के योग्य पर्याप्त उत्साह अपने में नहीं पायेंगे। इसलिए इस प्रश्न का विचार कर लेना उचित होगा। हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह काम आसान नहीं है। परन्तु सबसे पहला विचार तो हमें यह करना चाहिए कि जिस महान् उद्देश्य को लेकर ये यज्ञ-चलाये जा रहे हैं, वह सिद्ध करने के योग्य है या नहीं ? अगर है, तो उसके लिए जी-जान से जुट जाने में ही पुरुषार्थ है। काम जितना कठिन है, उतना ही उसके लिए अधिक प्रयास करना होगा। उसे छोड़ देना मनुष्य के लिए शोभास्पद नहीं है। दूसरी बात यह है कि सर्वोदय का स्वप्न कभी साकार न हो, तो भी ये यज्ञ अपने-आपमें ही बहुत कल्याणकारी हैं। इसलिए इन्हें सफल करने में कोई कसर नहीं रहनी चाहिए।

असंभव नहीं है

साधु-संतों का प्रयास व्यर्थ नहीं गया। उनका मानव समाज पर बड़ा ऋण है। अगर वे सदाचार की शिक्षा न देते, तो हमारी क्या

दशा होती ? उन्होंने हमें एक मंजिल तक पहुँचाया है, जहाँ से उनकी सीख दीप-स्तंभ की तरह हमें चेतावनी देती हुई आगे का मार्ग बताती है। उन्हींकी बातें हमें आज की भाषा में समझनी होंगी। उन्होंने हमें आध्यात्मिक दृष्टि से समझाया, जो मनुष्य के सुधरने का और नैतिक बनने का मूलभूत आधार है। परंतु अब समाज इतना पेचीदा बन गया है कि हमें व्यावहारिक दृष्टि का भी ध्यान रखना होगा। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' की बात सही है। कुछ संप्रदायों में यह संकल्प भी कराया जाता है कि मेरा जो कुछ है, वह ईश्वर को अर्पण है। पर प्रश्न यह है कि जगत् में ईश्वर का प्रतिनिधि कौन है ? मैं अपने को ही ईश्वर का प्रतिनिधि क्यों न मानूँ और मनमाने ढंग से संपत्ति आदि का उपभोग करूँ, तो मुझे कोई मना क्यों करे ? वस्तुतः ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधित्व समाज की ओर आना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि हमारे पास जो कुछ है, वह समाज की कृपा का फल है, इसलिए उसका लाभ समाज को मिलना चाहिए। यह केवल कल्पना की बात नहीं है, वस्तुस्थिति है। इस पुस्तिका में यही तत्त्व समझाने की कोशिश की गयी है। साधु-संतों ने सबके प्रति समभाव रखने को कहा, परंतु साथ ही यह भी कहा कि व्यक्ति को जो दुःख भोगना पड़ता है, वह उसकी किस्मत का खेल है। वास्तव में बहुत-सी विषमताएँ या कष्ट मनुष्य-निर्मित सामाजिक व्यवस्था के कारण हैं। अब यह मानने का समय आ गया है कि मनुष्य के प्रयत्न से उसमें परिवर्तन हो सकता है, ताकि सुख हो, तो सब बाँट लें और दुःख हो, तो सब सहन करें। यह न्याय नहीं है कि कुछ लोग सुख-चैन में रहें और करोड़ों कष्ट में।

फिर भी मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति इतनी प्रबल है कि अगर उसका सुधरना केवल व्यक्ति के अधीन हो, तो हम बुराई के मिटने की आशा कम ही रख सकते हैं। मनुष्य की मानवता पर हमें भरोसा रखना चाहिए। पर प्रश्न अधिकांश समाज के यथासंभव जल्दी सुधा-

रने का है। इस दृष्टि से यह बात ध्यान में रखने लायक है कि मनुष्य जो सुधरता है, वह कुछ अपने विवेक से, कुछ समाज की विचारधारा के दबाव से। जरायम-पेशा जातियों में चोरी करना दोष नहीं माना जाता; बाकी सारे समाज में वह दोष माना जाता है। यह परिणाम उस समाज की विचारधारा का है, जिसमें हम रहते हैं। अगर पहले लिखे मुताबिक सम्पत्ति और विद्या-बल के बारे में समाज में विचारधारा बदल जाय, तो उनका उपयोग समाज-हित में होना बहुत कुछ संभव है। साम्यवाद के आधे जगत् ने यह विचार मान लिया है। पूँजीवाद के जगत् ने भी यह मान लिया है कि राज्य को कल्याणकारी होना चाहिए, जिसमें हरएक को सर्वसाधारण आवश्यक चीजें मिल ही जानी चाहिए, ताकि कोई भी कष्ट में न रहे। जगत् में जो हवा चल रही है, उससे भारत अछूता कैसे रह सकता है? और चूँकि भारत में नब्बे प्रतिशत लोग दरिद्रावस्था में हैं, इसलिए इस विचार का दृढ़मूल होना कठिन नहीं है। वे गरीब लोग अपने हक की भाषा तो समझ ही सकते हैं; उन्हें उनके कर्तव्य की भाषा भी समझानी है। यज्ञ में योग देने के लिए उनकी गरीबी के कारण उनको प्रत्यक्ष में आर्थिक त्याग तो थोड़ा-सा ही करना पड़ेगा, पर इतना आवश्यक है कि वे त्याग का महत्त्व समझ लें। वे अपनी ओर से थोड़ा-सा भी त्याग किये बगैर केवल श्रीमानों से ही त्याग की अपेक्षा रखेंगे, तो काम नहीं होगा। इसीलिए इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि गरीब भी इन यज्ञों में शरीक हों।

विचार में बड़ी शक्ति होती है। अगर बहुजन-समाज के विचार का प्रवाह सही दिशा में चलता है, तो समाज-परिवर्तन में शंका नहीं रहनी चाहिए। पर यह पूछा जाता है कि इस प्रक्रिया में कितना समय लगेगा, कहाँ तक धीरज रखें? क्रांति इस प्रकार मंदगति से नहीं हो सकती। क्या हिंसा या कानून से काम जल्दी हो सकता है? अनुभव तो यही बताता है कि इन दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं में काफी समय

लगता है। फिर मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ज्यों-का-त्यों भला-बुरा बना रहता है, सो अलग। इस जमाने में विचारों का परिवर्तन भी बड़े वेग से हो रहा है। दूर-दूर का सम्पर्क काफी बढ़ गया है। जिस बात के लिए पहले सौ वर्ष लगते थे, वह अब दस-पन्द्रह वर्षों में हो सकती है। पुराने जमाने में प्रक्रिया अधिकतर व्यक्तिगत रूप से होती थी, अब सामूहिक रूप से होने लगी है। बहुजन-समाज मानने लगा है और चाहता है कि विषमता न रहे, समानता आये। फिर भी कानून के लिए इनकार तो नहीं है। वह जन-मानस बदलने पर ही कामयाब हो सकता है। इसलिए समझा-बुझाकर और यज्ञों के रूप में आचरण कराकर समाज को बदलने का प्रयत्न हो रहा है। यह समझना गलत है कि हिंसा या कानून के सिवा भौतिक परिस्थिति और मानस बदलवाने का जनता के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। महात्माजी ने प्रयोग करके साबित कर दिया है कि सत्याग्रह हिंसा का स्थान ले सकता है, उससे भौतिक स्थिति बदलने के साथ-साथ मनुष्य का मानस भी बदलता है।

भारत में आज जनतंत्रात्मक राज्यसत्ता चल रही है। इसका तरीका भी यही है कि विभिन्न दलवाले अपनी-अपनी विचारधारा जनता को समझाकर उसके विचार बदलना चाहते हैं। यह प्रक्रिया भी वास्तव में विचार-परिवर्तन की ही है, न कि केवल कानून बनाने की।

ऊपर की बातों पर गहरा विचार करने पर कार्यकर्ताओं को विश्वास हो जाना चाहिए कि महात्माजी और विनोबाजी के बताये हुए रास्ते पर चलने से हम अपना उद्देश्य सिद्ध करने में सफल हो सकेंगे। न्याय की पुकार है—जमाने की माँग है, वह रुक नहीं सकेगी। अहिंसा का मार्ग ही कल्याणकारी है।

व्यक्तिगत मालकियत का हक

ऊपर लिखे मुताबिक विचार-परिवर्तन में व्यक्तिगत संपत्ति की मालकियत के हक के बारे में आमूल परिवर्तन होना आवश्यक है।

सोच-विचारकर देखा जाय, तो धन कमाना तो दूर रहा, समाज के सहयोग और मदद के बिना मनुष्य जिन्दा भी नहीं रह सकता। अगर किसीको अपने पुरुषार्थ का घमंड हो, तो वह जंगल में अकेला रहकर देखे। मनुष्य समाज में रहता है, एक-दूसरे की मदद होती है, तभी वह अपनी आजीविका चला सकता है। गरीब मजदूर को मालिक कुछ काम देता है, तब उस मजदूर का पेट भरता है और मजदूर की मदद से मालिक का काम बनता है। व्यापारी को कोई चीज बेचता है और उससे कोई चीजें खरीदता है, तब उसका व्यापार चलता है। कारखाने में भी अनेक तरह के लोग सहयोग देते हैं, तब कारखाना चलता है। बीमारों के कारण डॉक्टरों का काम चलता है और संपत्ति के झगड़ों के कारण वकीलों का। इस प्रकार सब धन्धे परस्पर के सहयोग से चलते हैं, जिनसे मनुष्य की आजीविका सधती है। जब मेरा शरीर-बल, बुद्धि-बल और संपत्ति बल समाज पर ही निर्भर है, तो इन पर केवल व्यक्तिगत मालकियत या अधिकार समझना न्यायसंगत कैसे हो सकता है ?

अगर हमारा स्वार्थ हमें दूसरी ओर न खींचे, तो इस निर्णय पर आना आसान होगा कि निज के लिए आवश्यकता से अधिक धन कमाना और अधिक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत मालकियत का हक समझना उचित नहीं है। मालकियत के हक का समाज के हित में विसर्जन हो यानी उसका उपयोग और अपनी बुद्धि का भी उपयोग समाज को मिले, यह माँग न्याय्य है। कानून में या समाज की मान्यता में व्यक्तिगत मालकियत के हक की जो विचारधारा चल रही है, उसमें परिवर्तन होना जरूरी है, अर्थात् इस धारणा पर आना होगा कि संपत्ति व्यक्ति की न रहकर समाज-हित के लिए हो।

कुछ गैर-समझ

जब धनिक लोगों से संपत्तिदान-यज्ञ के बारे में चर्चा की जाती है,

तब कहीं-कहीं उनकी ओर से कहा जाता है कि हम सरकार को भारी टैक्स देते हैं, जिसका उपयोग आखिर जनता के हित में ही होता है। उसे एक प्रकार से हमारा संपत्तिदान क्यों न समझा जाय ? इसी प्रकार कभी-कभी यह भी बहस होती है कि संपत्ति-दान-यज्ञ सरकार की आर्थिक वसूली का प्रतिद्वंद्वी है। सरकार कर-वसूली से धनिकों की आमदनी काटती है, वैसे ही संपत्ति-दान भी उनकी आमदनी काटता है; दोनों प्रक्रियाओं का आपस में द्वंद्व है। इसलिए संपत्तिदान-यज्ञ चलाना उचित नहीं है। वास्तव में ये दोनों दलीलें यज्ञ का सही अर्थ न समझने का परिणाम है। सरकार के पास जो कुछ पैसा जाता है, वह खुशी से नहीं, जबर्दस्ती से जाता है। देनेवाले बच निकलना चाहते हैं। आर्थिक-व्यवस्था में शुद्धता आने की जगह अशुद्धता बढ़ती है। उक्त दलील में यही मान लिया गया दीखता है कि भूदान और संपत्ति-दान-यज्ञ केवल भौतिक चीजें हस्तांतरित करने के लिए हैं। वास्तव में उनका उद्देश्य तो अलग ही है, जिसका विवेचन ऊपर किया गया है।

...

: ४ :

संपत्ति-दान की मात्रा और उद्देश्य

परिवार के व्यक्तियों की औसत संख्या पाँच मानकर दरिद्रनारायण के रूप में बाहर के एक व्यक्ति को अपने हृदय में स्थान मिले, इस आशय से यह सूचना है कि फिलहाल सम्पत्ति-दान में आय का छठा हिस्सा दिया जाय। यह हिस्सा केवल एक साल या एक ही बार नहीं, जीवनभर देने की बात है। क्योंकि अगर सम्पत्ति हम जीवनभर अपने पास रखते हैं या जीवनभर कमाई करते हैं, तो वह पहले बताये मुताबिक समाज की देन होने के कारण, समाज का उस पर सदा हक पहुँचता है।

मोटे तौर पर जीवनभर संपत्तिदान देते रहना भारी लगना संभव है, परंतु यह प्रक्रिया अंतःकरण-शुद्धि की है। यह हमारे जीवन में संयम लाने में मदद करेगी। इसमें स्वयं-प्रेरणा से स्वयं पर नियंत्रण आता है। इसके न होने से समाज में क्या चल रहा है, यह हम देखते ही हैं। जिनके पास करोड़ की संपत्ति है, वे दो करोड़ बनाने में जी-जान से लग रहे हैं। साधन की शुद्धता का शायद ही खयाल रहता है। इतना धन कमाने की जरूरत क्या है, इस धन का क्या करेंगे, इसमें खुद का कल्याण है या नहीं, इसका विचार कितने लोग करते हैं ? धनिकों को अपने काम-काज में व्यस्त रहने के कारण देश-सेवा के लिए फुरसत नहीं, गरीबों को पेट भरने की चिंता के कारण अवकाश नहीं, मध्यम-वर्ग बढ़ी हुई महँगाई के कारण त्रस्त है। देश-सेवा के काम के लिए कुछ अपवाद-रूप थोड़े-से ही व्यक्ति मिलते हैं। इस दशा में हमारी प्रगति कैसे हो ? वास्तव में

सबसे अधिक सुविधा उन धनिकों को है, जिनके परिवार में काफी लोग हैं और जिनमें से कुछ काम-काज सँभालने लायक हैं। उन्हें अपनी धार्मिक परंपरा के अनुरूप समयानुकूल वानप्रस्थाश्रम स्वीकार कर गरीबों की सेवा में लग जाना चाहिए। परंतु संसार की तथा धन की लालसा इतनी तीव्र है कि मरने तक इन बन्धनों से छूटने का हम विचार तक नहीं करते।

संपत्ति-दान की सामयिकता

[सम्पत्तिदान के विनियोग के सम्बन्ध में विनोबाजी तथा सर्व-सेवा-संघ द्वारा निर्णीत तीन उद्देश्य श्री जाजूजी ने बताये थे—भूमिहीनों को साधन-सामग्री, कार्यकर्ता-निर्वाह और सत्साहित्य का प्रचार। परन्तु बाद में समय-समय पर विचार-विमर्श के बाद इन उद्देश्यों में संशोधन भी हुए हैं और उसका जो अन्तिम रूप तय हुआ है, उसके लिए देखिये, सम्पत्तिदान की व्यावहारिक जानकारी, परिशिष्ट—६]

धनिक लोग कुछ-न-कुछ दान तो करते ही रहते हैं, कुछ शायद अपनी आय के छठे हिस्से से भी अधिक करते होंगे। पर यह दान खुद की प्रेरणा से न होकर प्रायः पर-प्रेरित होता है। कुछ विशिष्ट लोग माँगने को आते हैं, तो इनकार नहीं कर सकते; जिस काम के लिए दान दिया जाता है, वह चाहे उन्हें पसन्द न भी हो। ऐसा दान लेनेवाले और देनेवाले, दोनों के लिए अप्रिय रहता है। इसके बदले अगर ऐसा नियम बना लिया जाय कि हर साल आय का अमुक हिस्सा दान किया जायगा, तो दाता खुद सोचेगा कि कौन-कौन से काम उसके दान के लायक हैं। जो काम उसे प्रिय होगा, उसके लिए खुद सोच-समझकर वह अपने दान की रकम खर्च करेगा और अपने प्रिय उद्देश्य को सफल होते देखेगा। कुछ व्यापारियों में यह परम्परा रही है कि वे अपनी आमदनी का एक निश्चित हिस्सा दान-धर्म के लिए हर साल अलग रखते थे। कुछ जैन भाई अमुक मात्रा से अधिक संपत्ति संग्रह

न करने का व्रत भी लेते हैं। ऐसी पद्धति को सम्पत्ति-दान-यज्ञ व्यापक बनाना चाहता है।

पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि पुरानी पद्धति में सम्पत्ति पर अपना हक मानकर दया के रूप में दूसरे को मदद करने की बात थी। इससे उल्टे सम्पत्ति-दान-यज्ञ में सम्पत्ति की निजी मालकियत न मानकर, समाज की मानकर उसे खर्च करना है। पुरानी पद्धति में एक बड़ा दोष यह आ गया है कि वह समयानुकूल नहीं रही है। सात्त्विक दान तो वही समझा जा सकता है कि जो 'देशे काले च पात्रे च' हो। विनोबाजी ने सम्पत्ति-दान के जो उद्देश्य बताये हैं, वे देश की वर्तमान परिस्थिति में बहुत उपयुक्त हैं। अभी धनिकों द्वारा जो दान होता रहता है, उसका लाभ प्रायः शहरी मध्यम-वर्ग के लोगों को ही मिलता है। वास्तव में दान गरीब-से-गरीब के पास पहुँचना चाहिए—विशेषकर देहात के लोगों को, जिनकी संख्या भारत में ८० प्रतिशत है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जिसको दान दिया जाता है, वह पंगु न बने, बल्कि काम में लगकर स्थायी रूप से अपनी आजीविका अपने श्रम से सम्मानपूर्वक चला सके। भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ से यह बात विशेष रूप से सधती है।

परिशिष्ट—१

सम्पत्तिदान विषयक पलनी की चर्चा

: १ :

(दादा धर्माधिकारी)

संपत्तिदान-यज्ञ की बुनियाद अपरिग्रही समाज की तरफ कदम बढ़ाने के लिए है। जिस तरह भूमिदान मालकियत की बुनियाद बदलने के लिए है, उसी तरह जिन लोगों के पास जमीन नहीं है, लेकिन परंपरागत पितृ-धन है या अपनी कमाई के आप मालिक हैं—यह जो भावना समाज में है, इस भावना को बदलने के लिए संपत्तिदान है। इसमें संग्रह का विसर्जन होना चाहिए, जीविका का शुद्धिकरण होना चाहिए और अनुत्पादक व्यवसायों का निराकरण होना चाहिए। ये तीन बातें यदि संपत्तिदान में से नहीं होती हैं, तो वह क्रान्तिकारी नहीं हो सकता।

अब यह अगर हम क्रान्तिकारी मर्यादा में रखते हैं, तो हमारा खर्च कैसे चले, यह सवाल हमारे सामने आता है। मंदिर और मठ के हर पुजारी के सामने यह सवाल आता है। तो हम कहते हैं कि हम नैवेद्य में से खायेंगे, वह बात अलग है। लेकिन मठ की और मंदिर की जो संपत्ति है, उसका एक खास उद्देश्य है। भूमिदान का उद्देश्य पूरा करने के लिए संपत्तिदान का जितना उपयोग होता है, उसे आपने 'साधन-दान' कहा है। संपत्तिदान की कल्पना भूमिदान में से आयी। लेकिन उस कल्पना के पीछे यह बात थी कि जमीनवालों से तो आपने संपत्ति की और मालकियत की भावना छोड़ने के लिए कहा और उनको यह प्रत्यक्ष कार्यक्रम दिया, लेकिन जो लोग जमीन से अपनी जीविका नहीं कमाते और जिनके पास कुछ संग्रह है, उनके

लिए, छोटे और बड़े सबके लिए क्या हो? भूमिदान के बारे में तो मैं दाताओं के संघ की बात समझ सकता हूँ। क्योंकि उसमें कुछ देनेवाले हैं और कुछ पानेवाले। कुछ भूमिपति हैं, कुछ भूमिहीन हैं। लेकिन संपत्तिदान से तो आपने यहाँ तक कहा है कि जो कार्यकर्ता केवल योगक्षेम के लिए अपनी जरूरत के लायक लेते हैं, वह भी संपत्तिदान दें। लेकिन कल अगर कोई भिखारी संपत्तिदान करे, तो आप उससे यह कहेंगे कि उसका संपत्तिदान हमको लेना चाहिए। लेकिन मकसद यह होगा कि धीरे-धीरे वह भीख माँगना छोड़ दे, इसकी तरफ कदम बढ़ाये। वहाँ तो उत्पादन का साधन ही आप दूसरे को दे देते हैं। इसलिए जो भूमिदान करता है, उसके दान में भी एक क्रांतिकारी मूल्य पैदा हो जाता है। संपत्तिदान में ऐसा नहीं होता। और मेरा कुछ ऐसा डर है कि हमारी गाड़ी पटरी से कुछ इस मामले में उतर रही है। संपत्तिदान की जो मूल कल्पना हमारे मन में थी, वह कुछ छूट रही है।

जयप्रकाश बाबू कहते हैं कि मूल्यों में परिवर्तन होना चाहिए। परिवर्तन अवश्य हो, लेकिन किस दिशा में हो? शंकररावजी ने कहा कि दाताओं को आज़ादी दे देनी चाहिए। अब मन्दिर को कोई जमीन दे दे और कहे कि मैं तो भूमिदान की क्रान्ति में मदद पहुँचा रहा हूँ, तो क्या आप यह मानेंगे? कोई सौ ब्राह्मणों को भोजन ही दे और कहे कि मैं सम्पत्तिदान कर रहा हूँ, तो यह नहीं मान सकते। आजादी तो हरएक को है। हम यही कहते हैं कि हमको इतनी आजादी हो कि हम उसको सम्पत्तिदान न मानें। दानवृत्ति तो हम कभी नहीं रोकना चाहते। लेकिन इस दिशा में उसको मोड़ना चाहते हैं। तीसरी बात इसमें यह आयी थी कि दाता जहाँ वह रहता है, वहीं उसका विनियोग करना चाहे, तो कर सकता है। इसमें भी मेरा अपना थोड़ा मतभेद है। मैं यह चाहूँगा कि मजदूर अगर सम्पत्तिदान करते हैं, तो किसानों के लिए करें और किसान अगर सम्पत्तिदान करते हैं, तो मज-

दूरों के लिए करें। किसान और मजदूरों का हित-विरोध आज की समाज की एक वास्तविकता है और आजकल के क्रान्तिकारियों ने कोशिश यह की है कि इन दोनों को मिलाकर एक संयुक्त मोर्चा बने। हमारे क्रान्ति के जो विचार हैं और जो प्रक्रिया है, उसमें मैं समझता हूँ कि इस तरह से कुल किसानों का और मजदूरों का भी संयुक्त मोर्चा बने—यह हमने नहीं माना। फिर भी आज किसान और मजदूर इन दोनों में जो हित-विरोध है, उसको हम जरूर कम करना चाहते हैं।

विनोबा ने एक दफा कहा था कि भूमि-दान से भी सम्पत्तिदान-आन्दोलन अधिक व्यापक हो सकता है। मैं इसे मानता हूँ। रिक्शेवाले, खोमचेवाले, स्टेशन के कुली से लेकर टाटा, डालमिया, बिड़ला तक सबसे जब आप सम्पत्तिदान लेते हैं, तो दाताओं के संघ का मतलब यह है कि उसमें रिक्शेवाला भी होगा और उसमें घनश्यामदास बिड़ला भी होंगे। बिड़ला का सम्पत्तिदान संघ में आने का यह मतलब होना चाहिए कि वे अपनी सारी सम्पत्ति का धीरे-धीरे विसर्जन करें और रिक्शेवाले, खोमचेवाले का उसमें आने का यह मतलब रहेगा और होना चाहिए कि वह अपनी कमाई का मोह तो छोड़ देगा, लेकिन अपनी जरूरतें पूरी हों, इतनी आकांक्षा वह अवश्य रखेगा। और समाज में इसके लिए परिस्थिति पैदा हो, यह प्रयत्न उसके सम्पत्तिदान में से हो। याने छोटे सम्पत्तिदानों का मकसद यह होगा कि जो छोटे-छोटे गरीब आदमी हैं, उन लोगों के लिए ऐसी परिस्थिति पैदा हो कि मेहनत करने के बाद उनकी जरूरतें समाज में आसानी से पूरी हो सकें और जो बड़े संपत्तिवान् लोग हैं, उनकी संपत्ति का अर्थ यह होगा कि जो संग्रह आज उनके यहाँ हो गया है, उस संग्रह का विसर्जन हो और धीरे-धीरे वे भी उस सतह पर आ जायँ, जिस सतह पर दूसरे आदमी। जो आज नीचे हैं, वे ऊपर की तरफ आ जायँगे। इस तरह की यह दोहरी प्रक्रिया है। इतने जो दाताओं के संघ बनेंगे, उन दाताओं के संघ में आप भी आसानी से भूमि-

दाताओं के संघ का विचार कर सकते हैं। उस आसानी से इसका विचार नहीं कर सकेंगे।

संपत्तिदान-यज्ञ की क्रांतिकारी भूमिका भूमिदान-यज्ञ की क्रांतिकारी भूमिका के तुल्य तो है, लेकिन उसके समान नहीं है। इन दोनों का अंतिम उद्देश्य एक है, लेकिन इन दोनों के जो निकटवर्ती उद्देश्य हैं, उनमें कुछ अन्तर है। एक मालकियत की बुनियाद बदलने के लिए है। दूसरे में मालकियत की बुनियाद तो उतनी नहीं है, जितनी कि आज जो परिग्रह समाज में है, उस परिग्रह के सम विभाग की है। उसीके लिए हमको संपत्तिदान का विनियोग करना है।

पलनी (मदुराई)
२०-११-'५६

: २ :

(जयप्रकाश नारायण)

हमने एक विचार फैलाने का काम हाथ में लिया है। उस विचार को समझ करके कोई एक कदम आगे बढ़ता है, तो हमारा यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि तुमने संपत्तिदान दिया, तो उसका खर्च साधनदान, कार्यकर्ता-निर्वाह या साहित्य-प्रचार में ही करना चाहिए—दूसरे किसी कार्य में तुम उसे खर्च नहीं कर सकते। यह एक बन्धन हमने बना रखा है, जो इस आन्दोलन की व्यापकता को रोकता है। हमारा एक आन्दोलन ऐसा चल रहा है कि जितने निरुत्पादक व्यवसाय हैं, वे बंद हों और जीविका की शुद्धि इत्यादि हो। पर आज तो जिसकी जीविका बहुत अशुद्ध है, वेश्यावृत्तिवाली भी है, वह भी संपत्तिदान देती है, तो मैं उसे अस्वीकार नहीं करूँगा, इसलिए कि मुझे उसको विचार समझाने का मौका मिलेगा। ब्राह्मण-भोज करने के लिए संपत्तिदान लिखा देने को हममें से कोई भी नहीं कहेगा कि वह संपत्तिदान हुआ। संपत्तिदान से स्वामित्व के विसर्जन

का संदेश हम लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं और कहना चाहते हैं कि किसी भी व्यवसाय से जो कुछ हमने उपार्जन किया, हम उसके मालिक नहीं हैं, समाज मालिक है। ऐसा मानकर हमें बाँटकर खाना चाहिए। आवश्यकतानुसार जैसे परिवार में बाँटते हैं, वैसे समाज में हमें बाँटना है। यह हम संपत्तिदान-आन्दोलन का तथ्य समझते हैं। इस तरह का हमारा जीवन हो, तो उसमें सबके लिए सुख और समाज तथा विश्व में शांति पैदा होगी। यह विचार हम समझा देते हैं और उसमें से कोई कहता है कि हम छठा, आठवाँ, बीसवाँ हिस्सा देना चाहते हैं, तो हम अपनी तरफ से तो यही कहेंगे कि भाई, ठीक है, आपने यह विचार समझ लिया। इसका विनियोग आप करें। फिर हम कौन होते हैं जो कहें कि इस प्रकार से खर्च करेंगे। हाँ, यह बात उनके सामने रखेंगे कि समाज में भूदान के रूप में एक काम हो रहा है, क्रांतिकारी रूप प्रकट हो रहा है। कुछ जमीन दी जा रही है, उसके लिए साधन की आवश्यकता है। सबकी शक्ति एक तरफ अगर चलती है तो क्रांति होती है। हम सलाह देंगे कि ऐसा आप करें, तो अच्छा होगा। लेकिन आप खुद करें, नहीं करना चाहते हैं तो हमें दें, हम उसका उपयोग कर लेंगे।

लेकिन अगर वह कहता है कि आपका विचार हमने समझा, लेकिन हममें आज यह हिम्मत नहीं है कि मैं सब त्याग दूँ और समाज को अर्पण करूँ और समाज हमें उसमें से निर्वाह के लिए कुछ दे—यह हिम्मत नहीं है। हम एक संकेत के रूप में इतना करते हैं, तो दूसरों की सेवा में दूसरे के ऊपर हम यह खर्च करेंगे। हम कहेंगे कि भाई! ठीक है। हम कौन होते हैं, तुम्हें कहनेवाले—सिवा इसके कि हम सलाह देना चाहते हैं। तन्त्र अच्छा है, बढ़िया है, लेकिन इसकी क्या आवश्यकता है। उसे हम क्यों बढ़ायें? वह एक बोझ हो जाता है, दबाव हो जाता है। फिर काम का विस्तार नहीं होता, फैलता नहीं है। तो जनता को विचार देना और फिर कहना

कि करो इसे। हम सिर्फ सलाह देते हैं। सलाह देने का काम हम करते हैं।

दाता-संघ बनाना आवश्यक है, यह भी मैं नहीं मानता। यह जरूरी नहीं है कि हरएक को संघ में आना ही पड़े। विचार समझकर उसका आचरण हो सकता है—इतना हम मानते हैं। हमें सरलता की तरफ जाना चाहिए। यह आन्दोलन आहिस्ते-आहिस्ते चले, विचार-पूर्वक चले और उसमें कम-से-कम लोगों की आवश्यकता हो, हमारे नियमों की कम-से-कम आवश्यकता हो और हमारी व्यक्तिगत मदद की भी कम-से-कम आवश्यकता हो। इसकी तरफ हमें बढ़ना चाहिए। तब इसका विकास होगा। सम्पत्ति का स्वामित्व हमें छोड़ना है। सबकी सम्पत्ति समाज की है। सबके साथ मिल करके, बाँटकर खाना है, यह विचार है। अब दाता सिर्फ फलाँ चीज के लिए खर्च करे, यह विचार मैं नहीं मानता। यह आवश्यक इसी माने में हो जाता है कि एक कार्य मैंने उठाया है और उस कार्य की पूर्ति होनी चाहिए, जिससे क्रांति की पुष्टि होती है। तो हम उससे कहेंगे कि भाई! सब शक्ति लगाओ। तुम इस काम में अपना दान लगाओगे, तो इससे शक्ति निखरेगी। यह हम उससे कहेंगे। इतना कहने का हमें अधिकार है। लेकिन वह ऐसा नहीं करता, तो हम उसका सम्पत्तिदान सम्पत्तिदान नहीं मानते हैं, यह बात मुझे मान्य नहीं है।

पलनी (मदुराई)
२०-११-'५६

: ३ :

(विनोबा)

अभी हमने जितना सुना, वह सबका सब हमको सही मालूम हो रहा है। प्रथम तो यह सुझाया गया कि शहरों में छोटे-छोटे लोग या साधारण लोग जो सम्पत्तिदान देते हैं, उसका विनियोग कहीं बहुत दूर हो, तो उसका दर्शन नहीं होता है। इसलिए सम्पत्तिदान का विनियोग दर्शन-क्षेत्र में होना चाहिए। मुझे लगता है कि यह बहुत ही बुनियादी विचार है। दर्शन-क्षेत्र में ही अगर उपयोग होता है, तो उस उपयोग का ठीक मूल्य निकलता है। उससे प्रेरणा भी मिलती है।

नारायण भाई ने कहा कि इस सारी योजना का क्रान्ति की तरफ जाने के लिए याने उस दिशा में अग्रसर होने के लिए जो अंकुश है, वह हमको नहीं छोड़ना चाहिए। यह बात हमको सही लगती है। अगर सम्पत्तिदान का उपयोग निरंकुश रहा, तो इष्ट कार्य-सिद्धि उससे नहीं होगी, चाहे अनिष्ट न होता हो; क्योंकि दाता श्रद्धा-भावना से प्रेरित है। इस वजह से कुछ-न-कुछ भला काम वह करेगा, ऐसा हम मान लेते हैं। इसलिए अनिष्ट बहुत न निकले, तो भी इष्ट कभी नहीं होगा। हम समझते हैं कि यह बात ठीक है।

शंकररावजी ने कहा कि हमारा अंकुश 'अहिंसात्मक' होना चाहिए, याने वह आज्ञास्वरूप नहीं होना चाहिए। हम अपना विचार सुझायें और फिर उस दाता की समझ-शक्ति पर हम छोड़ें। वह जितना ग्रहण करता है, जिस तरह ग्रहण करता है, उस तरह करे। अगर हम ऐसी स्वतन्त्रता नहीं रखते हैं, तो हम अपने-आपको ही खंडित करते हैं, याने अहिंसा के विचार को खंडित करते हैं। अर्थात् क्रांति को ही

खंडित करते हैं। शंकररावजी ने 'अहिंसात्मक' का तरजुमा 'वैचारिक' शब्द में किया। अहिंसा का मुख्य स्वरूप वैचारिक ही है। इसलिए हम विचार समझायेंगे और विचार समझाने से ही हम कृतकार्य होंगे। विचार सुनने से ही वह कृतकार्य होगा। फिर उसके बाद जैसा उसको सूझेगा, वैसा वह करेगा, तो अहिंसा के लिए मौका रहेगा। यह हमको बहुत ही मूलभूत बुनियादी विचार मालूम होता है।

अप्पासाहब ने जो कहा, वह दूसरे प्रकार का है। उनका कहना है कि हम दाता को दिशा सुझायें कि भाई, जो करना है, वह समत्व की तरफ ले जानेवाला हो, याने ऐसे उद्देश्य से प्रेरित हो। मेरे पास लाखों रुपये पड़े हैं, उसमें से कुछ मैं दान देता हूँ, तो यह कोई उद्देश्य समझकर किया हुआ काम नहीं है, दुःख-निवारण मानकर किया हुआ है। इतना करना हमारे लिए पर्याप्त नहीं। दुःख-निवारण का उद्देश्य बहुत ही अच्छा उद्देश्य है। लेकिन अभी हमने कहा है कि वह हमारा इष्ट नहीं है। अगर दुःख-निवारण होता है, तो वह हमारे लिए अनिष्ट नहीं है। पर हमारा इष्ट कार्य है कि दुःख निर्माण ही न हो। वह होता है, विषमता में से। इसलिए समता की वृत्ति रख करके दाता के दान का विनियोग किया जाय। एक बात उन्होंने कही कि बहुत सारे विषयों में खर्च होने के बजाय प्रथम भूमिदान को ही सहायता करने में खर्च हो, तो मेरा खयाल है कि वैसा करना ठीक होगा। हम सारे साधक मुख्य साधना तो उसीकी करते होंगे। हमारी आवश्यकताएँ समाज के सामने सतत आया करेंगी। इसलिए सम्पत्तिदान देनेवाले जरूर यह सोचेंगे कि इनके कार्य में अगर हम हाथ बँटाते हैं, तो हम अधिक सार्थक होते हैं। इससे भिन्न अगर हम काम करते हैं, तो करने का हक नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु इस काम में हाथ बँटाना हम जरूर चाहेंगे।

अभी कोयम्बतूर के मिल-मालिकों के साथ बातें हो रही थीं। मैंने बातें समझायीं। उसमें एक से कहा कि आप अपना हिस्सा

दीजिये। लेकिन आप सब लोग अपना-अपना व्यक्तिगत हिस्सा देंगे, तो मुझे कुछ नहीं कहना है।......परन्तु मालिकों के असोसियेशन के जरिये अगर आप कुछ देना चाहते हैं, तो आपकी सर्वसम्मति से मुझे वह मिलना चाहिए। आपकी सभा होगी। उसमें यदि दो जन विरुद्ध रहें और २५ अनुकूल रहें, तो मैं आपका सम्पत्तिदान नहीं स्वीकार करूँगा। यह सुनकर उनको थोड़ा आश्चर्य लगा होगा, क्योंकि प्राप्ति के मार्ग में बड़ी-से-बड़ी रुकावट मैंने डाल दी। जो प्राप्ति मैं करना चाहता हूँ, उसके मार्ग में मैं ही इस तरह की रुकावट डालूँ, यह कुछ विचित्र-सा दीखता है। परन्तु मैं उनकी सम्पत्ति का तो भूखा नहीं हूँ। उनका हार्दिक, मानसिक सहयोग चाहिए। मेरा काम वही आगे चलायेंगे, नहीं तो मुझे ही काम करते रहना होगा। मैं चाहता हूँ कि मेरा काम मेरे हाथ से दूसरों के हाथ में जल्द-से-जल्द जाय। इस वास्ते मैंने यह चर्चा की।

नायकम्‌जी ने उनके सामने सहज ही एक बात पेश की। उन लोगों को अभी कुछ बोनस देना पड़ा है। बोनस के बारे में कुछ वाद हुआ और उस वाद में कोर्ट का फैसला मजदूरों के पक्ष में हुआ। इसलिए उन्हें बोनस देना पड़ा। तो उसमें काफी संपत्ति उनको देनी पड़ी। नायकम्‌जी ने कहा कि बोनस तो आपने उन मजदूरों को दिया, जो आपके यहाँ काम करते हैं। वह उचित ही है। लेकिन इतने से आपका कर्तव्य पूरा नहीं होता है। आपको समझना चाहिए कि कपास आपको कौन देता है। जो मजदूर खेत में काम करता है, जो किसी चीज का मालिक नहीं है, उसकी मेहनत से वह आपको मिला है। बोनस के खयाल से आप देखेंगे, तो भी आपने जो बोनस दिया, सो उचित ही है, इसके अलावा भी आपके धंधे का अंग ही बोनस देना है। उस खयाल से भी आपकी संपत्ति का उपभोग भूमिहीनों के काम में आना है, यह जरूरी है, ऐसा थोड़ा उन्होंने उनको समझाया। कहने का तात्पर्य यह है कि जब हम यह काम कर

ही रहे हैं और सब मिलकर उसी काम पर जोर देते हैं, तो हमारी आवश्यकता क्या है, यह सम्पत्तिदान के दाता जानते हैं। जानते हुए भी अगर किसी दूसरे काम में वे उसे खर्च करना चाहते हों, तो हम उनको क्यों रोकें? परन्तु जानते हैं कि इस वास्ते अधिक-से-अधिक उसका विनियोग बिना किसी अंकुश के भूदान सफल करने में होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

दादा ने दो बातें कही हैं। एक तो यह कि संपत्तिदान में स्वामित्व के निराकरण का ही मुख्य विचार हमारा है, स्वामित्व के विघटन का नहीं। करीब-करीब वही चीज अप्पासाहब ने समत्व की भाषा में कही। उन्होंने कहा कि समत्व की तरफ जाने के लिए विनियोग होना चाहिए और आपने कहा कि भूमिदान देनेवाला स्वामित्व के······अंश का त्याग करता है, कई तो सबके सब देते हैं, तो पूरा निराकरण हो ही जाता है। लेकिन संपत्ति का एक अंश दान में देते हैं और वह किसी काम में आता है, इतने से उस सामूहिक त्याग का दर्शन उसमें नहीं होता है। संपत्ति विविध प्रकार से प्राप्त होती है, उसका विनियोग भी विविध प्रकार से हो सकता है। उसमें दुरुपयोग भी शामिल है, सदुपयोग भी शामिल है। इतना सब होने के कारण भूमि और संपत्ति में फर्क है। इसके अलावा भूमि की बुनियादी कीमत है। संपत्ति की याने धन की उतनी बुनियादी कीमत नहीं है। यह सब फर्क है। तो, दादा के कहने का तात्पर्य मैंने यह समझा कि हमारा कहीं कुछ काम रुका है। अपने कार्यकर्ताओं की आजीविका के लिए हमको कुछ प्राप्त करना है। जमीन की मदद के लिए भी कुछ करना है इत्यादि। ऐसी व्याकुल बुद्धि से हम इस दान का अंश स्वीकार करते चले जायँगे, तो यह एक पुण्य-कार्य तो होगा, परंतु संपत्तिदान का वह जो मूल उद्देश्य होना चाहिए, वह क्रांतिकारक नहीं होगा। मेरा खयाल है कि उन्होंने ठीक कहा। हमारी दान की माँग जहाँ होगी या दान का लक्ष्य सम-

झाने का जहाँ हम प्रयत्न करेंगे, वहाँ उसका संपत्ति के परित्याग का अपरिग्रह की तरफ जाने का या समत्व का जो मूल स्वरूप है, वह सब समझा करके, समझ करके ही जितना आज हो सकता है, उतना करने के खयाल से दादा ने भी कहा है। तब मेरा खयाल है कि उसमें क्रांति की प्रक्रिया बाकी नहीं है। पर यह चीज अगर हम अपने सामने न रखें, कार्यकर्ताओं के सामने यह न रहे और जिन्हें समझाया जाता है, उन्हें इस तरह से समझाया न जाय और हमारे उपयोग के वास्ते दान लिया जाय, तो वह दान, जैसा आपने कहा, एक साधन-दान के तौर पर लिया जा सकता है। परन्तु संपत्तिदान का स्वरूप उसे नहीं मिलता है। मेरा खयाल है कि यह बात विचार-निष्ठ है और इसे हमको ध्यान में रखना चाहिए, नहीं तो देखते-देखते हमारे कार्य का परिवर्तन, जो हम चाहते हैं, उससे भिन्न दिशा में हो सकता है।

उन्होंने एक बात बहुत ही सुन्दर कही कि इस प्रक्रिया में हमसे जो कोई भिन्न होंगे, उनको अपनाना है याने भिन्नता मिटानी है। जो भिन्नता दीखती है, उस खयाल से ही विनियोग होना चाहिए। मजदूर और मालिक, मजदूर और किसान में भेद है। इस वास्ते मजदूरों को किसान की चिंता होनी चाहिए, किसान को मजदूरों की चिंता होनी चाहिए। ऐसे एक-दूसरे की चिंता होगी, तो वह भेद मिट जायगा, समत्व भी आयेगा और क्रांति भी होगी। पर, अहिंसा का स्वरूप भी उसीमें है। इसलिए मजदूर कितने भी गरीब हों और स्वयं ही दूसरों की मदद के अधिकारी हों, फिर भी वे जब खुद सम्पत्ति-दान में दान देने बैठे हैं, तो अपने से भिन्न लोगों को वे दें, यह उन्होंने सुझाया। बहुत दूर के क्षेत्र में दान देना प्रेरक नहीं होता, यह जो बात जयप्रकाशजी ने कही, उससे यह बात विरुद्ध नहीं जाती। अपने दर्शन के अन्दर ही काम कर सकते हैं और अपने से भिन्न को दे सकते हैं।

अब सवाल यह है कि जहाँ ऐसी एक भावना मंजूर हो कि हम सारे मजदूर हैं याने इतनी एक चेतना हममें आ गयी है, इतनी व्यापकता हमारी हो गयी है कि हम मजदूर हैं, वहाँ मजदूरों के जरिये जो दान जायगा, वह उनसे भिन्न वर्ग को याने किसान आदि को जाय, यह बहुत ही लाभदायी और जरूरी है। पर मैं एक मजदूर हूँ, मेरा एक पड़ोसी मजदूर है, हम दोनों मजदूर हैं, यह भी मैं नहीं जानता। मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं एक परिवार का मनुष्य हूँ, मेरा एक परिवार है और इसका भरण-पोषण आदि करना, इतने में ही मेरे जीवन की सीमा है। कोई दूसरा मजदूर है, मैं मजदूर हूँ, इस वास्ते हम स्वजाति हैं, इसका भान मुझे नहीं है। उस हालत में मैं अगर अपने सम्पत्तिदान का हिस्सा उस दूसरे मजदूर को देता हूँ, तो मैं अपने से भिन्न को ही देता हूँ। अगर दोनों मिलकर हम एक हैं, ऐसी पहले से ही कल्पना हो, इतनी सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो, इतनी व्यापकता आ गयी हो, तो उस व्यापक मनुष्य का कर्तव्य है कि उससे अधिक व्यापक बनने के लिए भिन्न जाति को दे।

पलनी (मदुराई)
२०-११-'५६

परिशिष्ट—२

सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव

सम्पत्ति-दान का विनियोग

सम्पत्ति-दान के विनियोग के बारे में चर्चा हुई। अभी सम्पत्ति-दान की रकम भूमिहीनों को साधन देने, कार्यकर्ताओं के निर्वाह तथा सर्वोदय-साहित्य-प्रचार, इन तीन मदों में खर्च करने का निर्देश श्री विनोबाजी की ओर से है। सम्पत्ति-दान-यज्ञ को व्यापक बनाने की दृष्टि से यह सुझाव आया कि सम्पत्ति-दान का मूल उद्देश्य लोगों को समझाया जाय, पर उसके बाद सम्पत्ति-दान का विनियोग दाता पर ही छोड़ दिया जाय। समझकर सम्पत्ति-दान करनेवाला उसे गलत कामों में खर्च नहीं करेगा, यह भरोसा हमें रखना चाहिए। मजदूरों और विद्यार्थियों को यह छूट देना उचित होगा कि वे अपने सम्पत्ति-दान का उपयोग अपने आस-पास ही गरीब लोगों के लिए कर सकें। दूसरा विचार चर्चा में यह सामने आया कि सम्पत्ति-दान का उपयोग किन कामों में करें, इसके बारे में कुछ भी निर्देश दिये बिना सम्पत्ति-दान का जो मूल हेतु अहिंसक वृत्ति को आगे बढ़ाने का है, उसके एवज में वह एक राहत का कार्यक्रम रह जायगा।

श्री विनोबाजी ने कहा कि छोटे-छोटे दान-दाता सम्पत्ति-दान का उपयोग अपने आस-पास "दर्शन-क्षेत्र" में ही कर सकें, यह उचित होगा। इससे उन्हें क्रान्ति की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभूति होगी। यह भी सही है कि सम्पत्ति-दान के प्रत्यक्ष निरंकुश उपयोग से इष्ट-सिद्धि नहीं होगी—चाहे अनिष्ट न हो। पर जो "अंकुश" हो, वह अहिंसात्मक हो, यानी वैचारिक हो।

चर्चा के बाद सम्पत्ति-दान के विनियोग के बारे में नीचे लिखा निर्णय किया गया :

सम्पत्ति-दान की रकम का खर्च "भूदान-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान, अहिंसात्मक क्रान्ति" के उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए किया जाय। उदाहरण के लिए कुछ मदें नीचे दी जाती हैं, जिनमें से किसी एक या अधिक में सम्पत्ति-दान का उपयोग किया जा सकता है :—

(१) भू-दान-यज्ञ में जिन भूमिहीनों को जमीन दी जायगी, उनको साधन-सामग्री मुहय्या करना तथा प्राप्त हुई जमीन को तैयार करने में मदद करना।

(२) भू-दान-यज्ञ-आन्दोलन के खर्च के लिए उपयोग करना।

(३) सर्वोदय-साहित्य के प्रचार में मदद करना।

(४) विद्यार्थी वर्ग या मजदूर वर्ग में छोटे-छोटे दान-दाता अपनी परिस्थिति के अनुसार भू-दान-यज्ञमूलक क्रान्ति को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से मिलजुलकर या अलग-अलग अन्य कामों में भी खर्च कर सकते हैं। इस मामले में वे अपने "जिला-सेवक" की सलाह ले सकते हैं।

सम्पत्ति-दान-दाता को अपने सम्पत्ति-दान की रकम में से एक-तिहाई रकम स्वेच्छा से अन्य सार्वजनिक हित के कामों में खर्च करने की मौजूदा छूट कायम रहेगी।

पलनी
२१-११-'५६

परिशिष्ट—२

सम्पत्ति-दान का मूल विचार

सम्पत्ति-दान का मूल विचार क्या है? मूल विचार यही है कि सम्पत्ति हमारी नहीं, भगवान् की है; समाज की है और सबके सहयोग से प्राप्त हुई है। इसलिए हम इसके मालिक नहीं। वह हमारे पास है यानी हम उसके अमानतदार हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। इसके भोग का अधिकार हमें नहीं है। उतने ही हिस्से का हमें अधिकार है, जितना समाज हमें बताये कि तुम्हारा है। इस तरह हम सब लोगों के विचारों का परिवर्तन करें, तो एक गहरी क्रान्ति होगी। विचार-क्रान्ति, जीवन-क्रांति, मूल्यों की क्रान्ति होगी और समाज भी बदलेगा। सम्पत्ति के बारे में जिनके ये विचार हो गये हैं, वे लोग आपस में किस तरह व्यवहार करेंगे, इसका उत्तर देना आज हमारे और आपके लिए बहुत कठिन है। हम आगे के लिए नक्शे बना सकते हैं कि किस तरह कारखाने चलेंगे और प्रबन्ध कैसा होगा, लेकिन उस समय के ही लोग उसको अच्छा स्वरूप दे सकेंगे।

ट्रस्टी बनने से समस्या का हल

जब यह विचार समाज में फैल जायगा और बड़े-बड़े पूँजीपति ही नहीं, उनके मजदूर भी यह समझ जायँगे कि सम्पत्ति हमारी नहीं, समाज की है, तो वे 'ट्रस्टी' बनेंगे। उस समय प्रबन्ध कैसे होगा, यह तो बड़ा आसान प्रश्न है। सम्पत्तिदान का मूल विचार वही है, जो भूदान का है, श्रमदान का है, बुद्धिदान का है। इन सबका मूल विचार यही है कि जो हमारे पास है, वह समाज का है। उसमें हमारा उतना ही हिस्सा है, जितने को समाज हमारा कहता है।

सब लोग मालकियत की भावना छोड़ें

सम्पत्तिदान का केवल श्रीमानों से ही नहीं, बल्कि खोमचेवालों और रिक्शा खींचनेवालों से भी लेना है, मजदूरों से भी लेना है; क्योंकि सबकी शुद्धि करनी है। मूल्यों को बदलना है। सबके विचारों को बदलना है। जो मामूली मजदूर है, वह भी अपने को दो पैसे का मालिक समझता है। समाज में मालकियत की आम भावना है, इसीके ऊपर सारा ढाँचा खड़ा हुआ है। लोग दूसरों से तो कहते हैं कि तुम मालकियत छोड़ दो, पर खुद अपनी मालकियत छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इसीलिए सारा मजदूर-आन्दोलन निष्फल हुआ। मालकियत की भावना छुड़ाने के लिए ही सबसे सम्पत्तिदान लेना है।

सम्पत्तिदान के लिए पहले गरीबों के पास जाना चाहिए। हजारों और लाखों लोगों से सम्पत्तिदान लेना चाहिए। रुपये में एक पैसा मिले, तो एक ही पैसा लीजिये, आधे दिन की मजदूरी मिले या चौथाई दिन की मिले, तो उतनी ही लीजिये। दृष्टि यह है कि गरीब आदमी भूखों मरता है, फिर भी वह सर्वोदय का एक वोट दे रहा है।

जिन्हें हम जमीन देते हैं, अगर वह परती हो, तो उसे आबाद करने के लिए सरकार की मदद मिलनी चाहिए। सरकार दे, तो ठीक है; उससे बहुत दूर तक मामला हल हो जायगा। नहीं तो फिर समाज है ही; आखिर समाज से ही तो सरकार को मिलता है।

सम्पत्तिदान का मतलब यह नहीं कि वह रुपये में ही आँका जाय। जो पैदा करता है, उसका एक हिस्सा मिलना चाहिए। गाँव का लुहार फावड़े बनाकर दे दे, बढ़ई, कुम्हार अपनी-अपनी तरफ से कुछ-न-कुछ दें। याने जो आदमी जो कुछ पैदा करता है, उसका एक हिस्सा दे।

—जयप्रकाश नारायण

परिशिष्ट—४

संपत्ति-दान और मजदूर-वर्ग

संपत्तिदान-आंदोलन से पूँजीवादी व्यवस्था मिटेगी और सर्वोदय-व्यवस्था पैदा होगी, ऐसा हम मानते हैं। जैसे भूदान धीरे-धीरे चलता गया और अन्त में उससे ग्राम-दान निकला, वैसे ही संपत्तिदान में से भी नयी-नयी शाखाएँ निकलेंगी। दुनिया में जो विचारधाराएँ क्रांतिकारी कही जाती हैं—जैसे साम्यवादी विचारधारा, समाजवादी विचारधारा—वे मानती हैं कि पूँजीवादी-समाज में श्रमजीवी-वर्ग एक शोषित-वर्ग है। उसका शोषण मिटाने के लिए उद्यम करना होगा।

इस संबंध में मेरे दिमाग में एक विचार आता है। लगभग डेढ़ सौ बरस से दुनिया में मजदूर-आन्दोलन चल रहा है। इंग्लैंड में वह सबसे पहले शुरू हुआ। लेकिन मजदूरों के इस आन्दोलन से समाज में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन हो गया है, ऐसा मैं नहीं मानता। कहा जाता है कि रूस, चीन आदि देशों में मजदूरों का राज्य है, पर उन्हें वहाँ अपना कोई संघटन करने, अपना यूनियन बनाने तक का अधिकार नहीं है। उनके यहाँ भी काफी विषमताएँ पड़ी हुई हैं। वहाँ भी इस आन्दोलन से बहुत-कुछ हासिल कर लिया गया है, यह हम नहीं मानते। कुमारप्पाजी का भी मत है कि 'अमेरिका में 'माइनारिटी' (अल्पमत) है और रूस में 'मेजारिटी' (बहुमत), पर सर्वोदय कहीं नहीं है।'

गलत भावना

हमें ऐसा लगता है कि अगर देश के मजदूर-नेता सम्पत्तिदान के विचार को ग्रहण करें और यह विचार उनके अन्दर पैठ

जाय, तो जो काम डेढ़ सौ वर्षों में नहीं हुआ, वह दस-पन्द्रह वर्षों में हो सकता है। हम आज मजदूरों का संघटन करते और उनसे कहते हैं कि 'तुम्हारा शोषण होता है। जितना काम तुमसे कराया जाता है, उतना नहीं कराना चाहिए, इतनी-इतनी सुविधाएँ तुम्हें मिलनी चाहिए। रहने के बारे में, शिक्षण के बारे में, अस्पताल के बारे में बहुत कम सुविधाएँ तुम्हें मिलती हैं, आदि।' यूनियन का संघटन इसीलिए होता है कि मजदूर अपने स्वार्थ के लिए संघटित होकर लड़ें। मजदूर रोटी के लिए काम करता है। अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए वह संघटन कर रहा है। चाहे मजदूर महाजन हो, चाहे कम्युनिस्ट ट्रेडयूनियन, दोनों के पीछे यही भावना है। हमारा कहना है कि यह भावना ही गलत है। इस भावना से अधिक लाभ होनेवाला नहीं है।

मजदूर-आन्दोलन की नयी दिशा

हम मजदूरों से यह कहना चाहते हैं कि आप लोग पेट के लिए काम कर रहे हैं, ऐसा क्यों सोचते हैं ? वास्तव में आप पेट के लिए काम नहीं कर रहे हैं, समाज की सेवा कर रहे हैं। जैसे जवाहरलालजी, सन्त विनोबाजी एक जगह बैठकर समाज की सेवा कर रहे हैं, वैसे ही आप भी दूसरी जगह समाज की सेवा कर रहे हैं। आप समाज के लिए कपड़ा बनाते हैं, अपने लिए नहीं बनाते। समाज के लिए लोहा बनाते हैं, अपने लिए नहीं। समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के काम में आप लगे हुए हैं। अगर आप समाज की सेवा करते हैं, तो फिर आपको ऐसा समझना चाहिए कि आप यह सेवा भरपूर करें। आप कहें कि 'हम देश की सेवा कर रहे हैं। देश को जितना कपड़ा चाहिए, हम बनायेंगे। जितनी भी हमारी शक्ति है, सारी-की-सारी लगा देंगे।' आखिर आप यह क्यों नहीं मानते कि आप समाज के ही सेवक हैं ?

इतनी सेवा के बाद भी आप यह न कहें कि 'हमने इतनी सेवा की, इतना पैसा चाहिए।' माता की सेवा का कोई बदला नहीं होता। आपने समाज की सेवा की है, आवश्यकतानुसार आपको मिलना चाहिए। अगर काम करके दाम माँगेंगे कि 'हमने इतना किया, इतना दो', तो फिर सर्वोदय क्या हुआ ?

जो कमजोर आदमी होगा, उसकी आवश्यकता अधिक हो सकती है। समाज को उसे अधिक देना चाहिए। जो मजबूत आदमी होगा, उसकी आवश्यकता कम भी हो सकती है। पर कमजोर आदमी को कम मिले और मजबूत आदमी को ज्यादा, इसका तो कोई मतलब नहीं होता। हमारा विचार तो यह है कि जो कमजोर है, उसकी रक्षा हो। हम मजदूरों से कहते हैं कि आपने समाज की सेवा की, तो अपनी आवश्यकता भर उससे माँग लें। आप यह भी कहें कि दूसरे मजदूरों को और भी कम मिलता है, इसलिए हमें कुछ कम ही दीजिये। दूसरे मजदूर भाइयों के लिए इतना हम सम्पत्तिदान देते हैं, हमें अधिक नहीं चाहिए।

मालिक भी समाज का सेवक

अगर कोई विचारशील नेता मजदूरों को सम्पत्ति-दान का यह विचार समझा देता है और मजदूर इस भूमिका पर खड़े हो जाते हैं कि हम पूरी सेवा करेंगे और केवल आवश्यकता भर माँगेंगे, तो वे मालिकों से कह सकते हैं कि 'हम आपके नौकर नहीं, देश के नौकर हैं। हम आपके मुनाफे के लिए काम नहीं करते। मुनाफा जैसी कोई चीज है ही नहीं। जैसे हम नौकर, वैसे ही आप भी नौकर। आप भी समाज के सेवक हैं। आपके पास व्यापार करने की, उद्योग चलाने की बुद्धि है, तो आप समाज को उसे अर्पित करें। पर आप हमारा शोषण करें और हम आपके साथ उस शोषण में सहयोग करते रहें, यह नहीं होगा। आपको भी यह छोड़ना पड़ेगा।'

इस दृष्टिवाला मजदूरों का जो नेता होगा, वह सर्वोदय का कार्यकर्ता होगा। सर्वोदय का यह कार्यकर्ता मजदूरों को ही समझायेगा, ऐसा नहीं। वह जहाँ मजदूरों को समझायेगा, वहीं मालिकों को भी समझायेगा। हम यह नहीं मान सकते कि मालिकों पर उसका कुछ असर ही न होगा। जब मजदूर यह विचार समझ जायँगे, तब वे मालिक से कहेंगे कि आपकी रहन-सहन कुछ ऊँची है, तो हम समाज से कहेंगे कि वह आपको थोड़ा अधिक दे।

पूँजीवाद का रूपान्तर

मजदूर जब स्वयं मालकियत की भावना छोड़ें, तभी वे दूसरों से मालकियत की भावना छोड़ने को कह सकते हैं। नैतिक भूमिका पर खड़े होकर वे अपनी माँग पेश कर सकते हैं। मेरा खयाल है कि उनकी यह माँग ऐसी होगी, जिसे कोई भी रोक न सकेगा और यदि कोई रोके, तो वे कह सकते हैं कि 'यह जो शोषण है, आप जो सारी मुनाफाखोरी कर रहे हैं, वह पाप है। हमारा इसमें कोई स्वार्थ नहीं। हम इस पाप के भागी नहीं बन सकते। हड़ताल की तो बात हम नहीं जानते, पर सहयोग आपको इसमें हम नहीं देंगे। कारखाना हमें दीजिये, देश के लिए हम उसे चलायेंगे। आपके मुनाफे के लिए हम उसे क्यों चलायें?' अगर मजदूर-आन्दोलन से ऐसी आवाज निकले, मजदूरों के अन्दर ऐसी शक्ति पैदा हो, अगर मजदूर-नेता इस विचार को समझें, तो मैं समझता हूँ कि दस साल के अन्दर ही देश के पूँजीवाद के रूपान्तर के साथ-साथ प्रबन्ध का भी सवाल धीरे-धीरे हल हो सकता है।

—जयप्रकाश नारायण

परिशिष्ट—५

संपत्ति-दान के पावन-प्रसंग

: १ :

सर्वहारा का संपत्तिदान

जुलाई १९५४ की बात है। स्वर्गीय जाजूजी उस समय वर्धा पधारे थे। वर्धा के भूदान-कार्यकर्ताओं को बुलाकर उन्होंने कहा कि मैं मजदूरों में संपत्तिदान का काम करना चाहता हूँ। हमारे मुँह से 'अवश्य' शब्द तो निकला, पर मन में झिझक पैदा हुई। क्योंकि गरीबों में से कौन संपत्तिदान देगा, यह संशय मन में था। ऐसा प्रयत्न भारत भर में शायद पहला ही था। कोशिश करना तय हुआ।

वर्धा के बुरुड लोग सबसे गरीब माने जाते हैं। भंगी लोगों का जीवनमान इनसे ऊँचा है, ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। १०-१२ घंटा काम करने पर भी वर्धा जैसे शहर में मुश्किल से २०-२५ रुपया प्रतिमाह मिलता होगा इन्हें। ३०-३५ घर हैं इनके। घर कहना भी मुश्किल है। तीस साल से करीब-करीब आकाश के नीचे ही बुरुड रहते हैं। यहीं जन्म से मृत्यु तक उनके सोलह संस्कार होते हैं। रात को इनकी सभा बुलायी गयी। करीब-करीब सभी भाई आये। जाजूजी ने अपनी धीर-गंभीर वाणी से संपत्तिदान का मूल विचार समझाया। एक भाई दान माँगने खड़े हुए। करुणा जाग उठी। एक भाई उठ खड़ा हुआ। उसने कहा कि "मैं प्रति माह पंद्रह रुपया कमाता हूँ। मैं प्रतिमाह पंद्रह पैसे दूँगा।" उसकी वाणी से परमेश्वर बोल रहा था। हम बैठे हुए सब कार्यकर्ता देखते ही रह गये। उससे आरंभ होने की देर थी कि एक-एक भाई उठकर अपने-अपने दान की घोषणा

करने लगा। सभा में आये हुए करीब-करीब सभी लोगों ने दान दिया। सब लोगों के लिए यह अनोखा दृश्य था। सब तरह से हारे हुए, शोषित, पीड़ित मानव संपत्तिदान-आंदोलन में आगे आयेंगे, इस पर एकाएक विश्वास नहीं बैठता था।

: २ :

भूमिपुत्रों का त्याग

संपत्तिदान में प्राप्त रकम में से भूमिपुत्रों को मदद पहुँचाने के लिए कार्यकर्ता देहातों की ओर निकले। ऐसे काम का यह पहला प्रसंग था। मन में लगता था कि जिन भाइयों को औजार आदि देने जा रहे हैं, उनकी संख्या काफी है, उनकी जरूरतें भी बड़ी हैं। तकावी लेने जब लोग जाते हैं, तब कितनी दिक्कतें, कितनी भीड़ और कितना आपसी मनोमालिन्य होता है। वर्धा जिले के रत्नापुर में हम गये। यहाँ अट्ठाईस भूमिहीन कुटुंब थे। सबको जमीन बाँटी गयी थी। औजार एवं अन्य मदद मिलने के वक्त कौन गैरहाजिर रहेगा। कइयों को लगा कि आज पैसा मिलेगा, तो कल हमको सवाई से वापस करना होगा। सवाई से तो क्या, मूल रकम भी वापस करने की बात तक नहीं चली, इस पर उनका विश्वास नहीं बैठता था और कोई उनके गाँव में आकर 'आप पैसा लीजिये' कहेगा, यह उनके लिए कल्पना से परे की बात थी।

सभा में बात समझायी गयी कि १५० रुपयों के औजार आज मिल सकते हैं। ५-६ लोगों की माँग पूरी होगी। आप ही आपस में तय कर छह लोगों के नाम दीजिये। जो आपसे ज्यादा गरीब है, जरूरतमन्द है, उसीका नाम सुझाना और अपना नाम वापस लेना, इसीमें आपकी शान है। इस कथन का जादू का-सा असर हुआ। कई लोगों ने अपने नाम वापस लिये। सर्वसम्मति से छह अधिक जरूरतमन्द लोगों के नाम आये। रत्नापुर के नजदीक के एक गाँव के भूमिपुत्रों ने

कहा कि आप हमारे गाँव के भूमिपुत्रों को मदद देने के बजाय पड़ोसी गाँव के भूमिपुत्रों को मदद पहुँचायें। हमसे उनकी आवश्यकता ज्यादा है। ऐसे प्रसंग देखते ही बनते थे।

: ३ :

छात्राओं का पावन दान

वर्धा के महिला-आश्रम की करीब-करीब सभी बहनों ने अपने खर्च का ६४वाँ हिस्सा सम्पत्तिदान में देना तय किया था। इससे अधिक पढ़नेवाली बहनें दे ही क्या सकती थीं? लेकिन दो लड़कियों की पवित्र याद आ ही जाती है। सलिना बहन तिमोथी का फॉर्म जब भरा जाने लगा, तो उसने उठकर कहा कि मैं सोलहवाँ हिस्सा सम्पत्ति-दान में दूँगी। कार्यकर्त्री का विश्वास अपने कानों पर न रहा। इतनी गरीब यह लड़की, इतना बड़ा हिस्सा कैसे दे सकेगी! अतः फिर से पूछा गया। फिर से वही उत्तर आया और उसके साथ इस आखिरी वाक्य ने तो कमाल कर दिया "मैं दसवाँ-बारहवाँ हिस्सा दे नहीं सकती, इसका मुझे खेद है। अतः मैं लज्जा से सोलहवाँ दे रही हूँ।" सभी बहनें उसके मुँह की ओर देखने लग गयीं।

दूसरा अनुभव और भी अधिक प्रेरक। खुर्शीद ने कहा कि मैं छठा हिस्सा सम्पत्तिदान में देती हूँ! हम सब स्वप्न में तो नहीं हैं, ऐसा सबको लगा। बार-बार मना करने पर भी ये दोनों ईसाई एवं मुस्लिम बहनें अपने निश्चय पर अटल रहीं। इन दोनों के उदाहरण ने कई कठोर दिलों को पिघला दिया।

: ४ :

महारोगियों की सेवा में

१८ अक्तूबर १९५६ का वह दिन कितनों को सदा याद रहेगा। दत्तपुर के महारोगी-सेवा-मण्डल में भूदान कार्यकर्ता गये। आप महा-रोग से पीड़ित हैं, अतएव आप अनुकंपा के पात्र हैं, मदद के हकदार हैं, इसीसे भाषण का आरम्भ कार्यकर्ता ने किया। आपकी संख्या दो-चार लाख है। लेकिन भारत में बीस-पचीस करोड़ लोग दूसरे महा-रोग से ग्रसित हैं। उनका नाम है गरीबी, विषमता और बेकारी। इस बड़े महारोग को मिटाने के लिए विनोबा ने यज्ञ शुरू किया है। क्या इस यज्ञ में महारोगियों से हविर्भाग मिलेगा?

पूछने की देर थी कि एक के बाद एक पचास महारोगी उठ खड़े हुए और अपनी तुच्छ-सी दो-चार रुपये मास की आमदनी में से हरएक ने कोई-न-कोई हिस्सा देना स्वीकार किया। विकलांग, गलितरक्त महारोगी भी इस बड़े रोग को मिटाने के लिए उस दिन कटिबद्ध हो गये!

—ठाकुरदास बंग

परिशिष्ट—६

संपत्ति-दान की व्यावहारिक जानकारी

सम्पत्तिदान-यज्ञ के सम्बन्ध में अप्रैल १६५४ में बोधगया के सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर विस्तार से कुछ सोचा गया था। उस समय इस सम्बन्ध में एक पत्रक भी प्रकाशित किया गया था। मार्च १६५५ में पुरी-सम्मेलन के अवसर पर भी इस विषय में कुछ अधिक चर्चा हुई। वेजवाड़ा में दिसम्बर १६५५ में सर्व-सेवा-संघ की जो बैठक हुई, उसमें इस सम्बन्ध में कुछ निर्णय हुए। इस प्रकार सम्पत्ति-दान-यज्ञ का विचार उत्तरोत्तर विकसित होता आया है। पलनी में ता० १६ से २२ नवम्बर '५६ तक की बैठकों में तंत्र-मुक्ति और निधि-मुक्ति का जो क्रान्तिकारी निर्णय किया गया, उसके साथ-साथ सम्पत्तिदान के सम्बन्ध में भी कुछ विशेष चर्चाएँ हुईं। (देखिये, परिशिष्ट संख्या १ और २)

सम्पत्तिदान-यज्ञ का तात्त्विक विवेचन पिछले पृष्ठों में हो चुका है। महात्मा गांधी, विनोबाजी और श्री जाजूजी के विवेचन से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि भूमिदान-यज्ञ के पीछे जो सिद्धान्त है, वही सिद्धान्त सम्पत्तिदान-यज्ञ के पीछे भी है। अर्थात् जैसे जमीन पर किसीकी मालकियत नहीं होनी चाहिए, वैसे ही सम्पत्ति पर भी किसीकी मालकियत नहीं होनी चाहिए।

सम्पत्तिदान का स्वरूप

जहाँ तक सम्पत्ति प्राप्त करने का सवाल है, उसका जरिया शरीर-श्रम होना चाहिए, ताकि शोषण और विषमता की गुंजाइश न रहे, सम्पत्ति-उपार्जन का साधन भी शुद्ध ही रहना चाहिए।

मनुष्य के पास शरीर का, विद्या का या धन-सम्पत्ति का जो भी

बल है, वह उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज से ही प्राप्त किया है, इसलिए उसका उपयोग समाज के हित के लिए ही होना चाहिए। सम्पत्ति-दान के इस विचार को अमल में लाने की दृष्टि से पहले कदम के तौर पर सम्पत्ति-दान का स्वरूप यह रखा गया है कि दाता अपनी आमदनी का या किसी कारणवश यह सम्भव न हो, तो अपने गृहस्थी-व्यय का एक हिस्सा समाज के लिए अर्पण करता रहे। वह हिस्सा व्यक्ति की आमदनी के परिमाण पर अवलंबित रहे और उत्तरोत्तर बढ़ता जाय।

दरिद्रनारायण को अपने परिवार का एक सदस्य मानकर फिलहाल आमदनी का छठा हिस्सा और व्यय का हो, तो पाँचवाँ हिस्सा एक सामान्य परिमाण माना जाय।

आमदनी से मतलब, इनकम टैक्स आदि अनिवार्य खर्च बाद करके तमाम जरियों से होनेवाली कुल आमदनी समझनी चाहिए। गृहस्थी-खर्च में खान-पान, निवास आदि के अलावा बालकों की शिक्षा, विवाह आदि प्रसंगों के खर्च भी शामिल समझने चाहिए।

सम्पत्ति-दान में आमदनी का छठा हिस्सा माँगा जाता है, परन्तु यह कोई टैक्स नहीं है। इसलिए दाता अपनी इच्छा के अनुसार कम-ज्यादा हिस्सा भी दे सकता है, तथापि जिनकी आमदनी बिल्कुल निर्वाह जितनी ही या उससे भी कम है, उन्हें भी सम्पत्ति-दान-यज्ञ में जरूर शामिल होना चाहिए, पर उनका हिस्सा प्रतीक के तौर पर ही रह सकता है। अभी सम्पत्ति-दान में हिस्से की बात रखी गयी है, पर लक्ष्य तो यह है कि अपनी सारी सम्पत्ति समाज की है, ऐसा समझकर व्यक्ति समाज की ओर से उसके ट्रस्टी के तौर पर व्यवहार करने को तैयार हो। किसान अपना सम्पत्ति-दान अनाज के रूप में दे सकता है।

सम्पत्ति-दान का विनियोग

सम्पत्तिदान की रकम का विनियोग नीचे लिखे अनुसार दाता

खुद ही कर सकता है। पर हर साल एक बार उसका हिसाब अपने जिले के सर्वोदय-कार्यालय या सर्व-सेवा-संघ को भेज देना चाहिए। दाता चाहे, तो जिला सर्वोदय-कार्यालय या सर्व-सेवा-संघ से विनियोग के बारे में उनको मार्ग-दर्शन मिल सकता है। दाता चाहें, तो सम्पत्तिदान की रकम जिला सर्वोदय-कार्यालय या सर्व-सेवा-संघ को विनियोग के लिए सौंप सकता है। सम्पत्तिदान की रकम खर्च करने के बारे में पूज्य विनोबाजी की सलाह के अनुसार सर्व-सेवा-संघ ने नीचे लिखा निर्णय किया है :

सम्पत्ति-दान की रकम का विनियोग भूदान-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान, अहिंसक-क्रान्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाय। उदाहरण के लिए कुछ मदें नीचे दी जाती हैं, जिसमें से किसी एक या अधिक में सम्पत्ति-दान का उपयोग किया जा सकता है :

(१) भूदान-यज्ञ में जिन भूमिहीनों को जमीन दी जाय, उनको साधन-सामग्री मुहय्या करने तथा प्राप्त हुई जमीन को तैयार करने में।

(२) भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सिलसिले में होनेवाले खर्च के लिए।

(३) सर्वोदय-साहित्य के प्रचार में मदद।

(४) विद्यार्थी-वर्ग या मजदूर-वर्ग में छोटे-छोटे दान-दाता अपनी परिस्थिति के अनुसार भूदान-यज्ञ-मूलक क्रान्ति को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से मिल-जुलकर या अलग-अलग अन्य कामों में भी खर्च कर सकते हैं। इस मामले में वे अपने जिले के 'जिला-सेवक' की सलाह ले सकते हैं।

(५) सम्पत्ति दान-दाता अपने सम्पत्ति-दान की रकम में से एक-तिहाई रकम स्वेच्छा से अन्य सार्वजनिक हित के कामों में खर्च कर सकते हैं।

नोट : साहित्य के प्रचार के बारे में साहित्य मुफ्त बाँटने की पद्धति न रहे, पर यह कम कीमत में बेचा जा सकता है। किसी वर्गविशेष,

विद्यार्थी या कार्यकर्ता आदि को अधिक रिआयत दी जा सकती है। सार्वजनिक पुस्तकालयों, वाचनालयों को मुफ्त भी दिया जा सकता है।

सम्पत्ति-दान के कुछ विशेष उपयोग

(१) यदि कोई सवर्ण किसी हरिजन बालक को अपने घर में अपने परिवार का मानकर रखे और उसकी पूरी जिम्मेवारी उठाये, तो उस हद तक वह खर्च सम्पत्तिदान माना जाय।

(२) जहाँ संस्थाओं में कार्यकर्ता या शिक्षक एकत्र रहते हैं और उनके वेतन आदि में निश्चित ग्रेडों के हिसाब से एक-दूसरे में काफी अन्तर रहता है, वहाँ अगर वे सब अपनी आय एक जगह इकट्ठी कर लें और फिर प्रत्येक परिवार की सदस्य-संख्या के हिसाब से बाँट लें, तो यह सम्पत्तिदान का उत्तम स्वरूप होगा। फिर सम्पत्तिदान में सम्मिलित कोष में से, भले ही वे प्रतीक के रूप में केवल थोड़ा-सा ही दें।

विविध

चर्चा में यह भी सवाल सामने आया था कि कई जगह व्यापारी लोग लेन-देन में लोगों से लाग के तौर पर अनिवार्य रीति से धर्मादा की रकम वसूल करते हैं, जिसके उपयोग का कोई खास निश्चित उद्देश्य नहीं होता। क्या कोई व्यापारी अपने पास जमा हुई धर्मादा की रकम में से सम्पत्तिदान दे सकता है? राय यह रही कि ऐसी रकम में से सम्पत्तिदान नहीं दिया जाना चाहिए।

एक यह भी प्रश्न उठा था कि अगर किसी व्यक्ति के पास काफी जमीन है, पर भूदान-यज्ञ में जमीन न देकर केवल सम्पत्ति-दान देना चाहे, तो वह लिया जाय या नहीं? राय यह रही कि वह न लिया जाय।

कार्यकर्ताओं को हिदायतें

(१) भूदान-आन्दोलन में काम करनेवाले हर कार्यकर्ता को
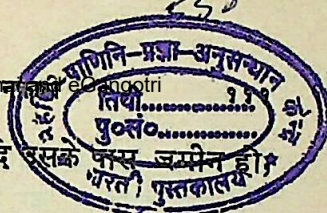
संपत्ति-दान में शरीक होना चाहिए तथा यदि उसके पास जमीन हो, तो दान भी करना चाहिए।

(२) जहाँ कहीं हम भूदान की माँग करते हैं या प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, वहाँ सम्पत्ति-दान की माँग भी उतने ही आग्रह से करें।

(३) हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस किसीने भूदान में जमीन दी है, उसको भी सम्पत्तिदान-यज्ञ में शामिल होना चाहिए।

(४) हम अक्सर अमीर और मध्यम स्थिति के लोगों से सम्पत्ति-दान के लिए प्रयत्न करते हैं, पर हमें गरीबों से भी सम्पत्तिदान प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। सम्पत्ति की मालकियत का मोह गरीबों में भी होता ही है। उनके दान की रकम थोड़ी-सी होगी, परन्तु उससे एक व्यापक वातावरण तैयार होगा और इसका असर सब पर पड़ेगा।

(५) ऊपर लिखा गया है कि जिनकी आमदनी बिलकुल निर्वाह जितनी ही या उससे भी कम है, उन्हें भी सम्पत्तिदान-यज्ञ में शामिल होना चाहिए, पर उनका हिस्सा प्रतीक के तौर पर ही रहेगा। पूछा जाता है कि गरीबों का हिस्सा कितना रहे और अधिक आमदनी में सम्पत्तिदान का हिस्सा किस परिमाण में बढ़ता रहे? इसका कुछ स्पष्टीकरण हो जाना उचित है। इसके अलावा, चूँकि सम्पत्तिदान का संकल्प लम्बे अरसे के लिए होता है और उसमें आमदनी का घटना-बढ़ना भी बहुत कुछ सम्भव है; इसलिए संकल्प करते समय जो आमदनी हो, उसमें आगे चलकर घटा-बढ़ी हो, तो उसके हिस्से का परिमाण क्या रहे, इसका भी कुछ अंदाज रहना उचित है; ताकि बार-बार नया दान-पत्र न भरकर दाता खुद उस परिमाण के अनुसार अपने हिस्से को घटा-बढ़ा सके। इसलिए यहाँ हिस्से के परिमाण का संकेत किया जा रहा है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह कोई कानूनी

टैक्स का परिमाण नहीं है। दाता अपनी परिस्थिति के अनुसार उसमें कुछ कमी-बेशी भी कर सकेगा। पू० विनोबाजी का तो कहना यही है कि दरिद्रनारायण को अपने घर का एक सदस्य मानकर उतना हिस्सा सम्पत्तिदान में देना चाहिए। वास्तव में सम्पत्तिदान की मात्रा वैसी ही होनी चाहिए। परंतु जिनकी आमदनी बहुत थोड़ी है, उनके लिए निर्वाह की अड़चन का खयाल करते हुए कुछ परिमाण का संकेत कर देने की माँग है। इसलिए यहाँ परिमाण सुझाया जा रहा है। पर वह कम-से-कम है, ऐसा ही समझना चाहिए। जिसकी मासिक आमदनी पचास रुपये तक है, वह प्रति रुपया एक पैसा अर्थात् चौसठवाँ हिस्सा, मासिक पचास रुपये के ऊपर और डेढ़ सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया दो पैसा अर्थात् बत्तीसवाँ हिस्सा, डेढ़ सौ रुपये से ढाई सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया तीन पैसा अर्थात् बीसवाँ हिस्सा सम्पत्तिदान में प्रदान करे। इस प्रकार आगे प्रति सौ पर एक-एक पैसा बढ़ाकर फिलहाल पहले कदम के ही तौर पर छठे हिस्से के परिमाण तक पहुँचना चाहिए। जिनकी अमदनी खासी है, उनको तो इससे भी अधिक देना चाहिए।

(६) सम्पत्तिदान और साधनदान, दोनों के लिए एक साथ प्रयत्न करने में कुछ पेचीदा परिस्थिति खड़ी हो जाती है। हमें साधनदान की अति आवश्यकता है। पर जब व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से आम सभाओं में दोनों बातें एक ही साथ रखी जाती हैं, तो साधन-दान आसान होने के कारण लोग उतना-सा ही स्वीकार कर लेते हैं और सम्पत्ति-दान की बात पीछे पड़ जाती है। सम्पत्तिदान गहरी चीज है। हमारे आंदोलन में उसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके मुकाबले में साधनदान गौण है। सम्पत्तिदान में बाधा पहुँचे, ऐसी बात न करना उचित होगा। इसलिए भूमि-वितरण के समय, तो वहाँ के उपस्थित लोगों से साधनदान के बारे में आग्रहपूर्वक कहा जाय, ताकि जिनको जमीन दी जायगी, उनका एक साल का काम किसी

प्रकार निभ जाय, पर अन्य सब मौकों पर सम्पत्तिदान पर ही जोर देना चाहिए।

(७) यदि दाता चाहे कि उसके दान के हिस्से या आमदनी का अंदाज गुप्त रहे, तो कार्यकर्ताओं को सावधानी के साथ वैसा करना चाहिए और प्रांतीय दफ्तर में एक अलग रजिस्टर रहे, जो गुप्त माना जाय और उसे प्रांतीय-समिति के मुख्य अधिकारी ही देख सकें।

अनुरोध

प्रार्थना की जाती है कि सबको सम्पत्तिदान-यज्ञ में योग देना चाहिए, चाहे वे गरीब हों या धनिक। राज्य-सत्ताधारी, सरकारी अधिकारी, व्यापारी, उद्योगपति तथा बुद्धि-प्रधान पेशों में लगे हुए लोगों से विशेष आशा रखी जाती है। मंत्रिगण, धारासभाओं के सदस्य, राजनैतिक और सामाजिक नेता आदि पर समाज-हित की विशेष जिम्मेवारी है। इसलिए वे इसमें अवश्य योग दें, खुद इसमें शामिल होकर दूसरों को भी प्रेरणा दें।

सबै भूमि गोपाल की   सम्पति सब रघुपति कै आही

सम्पत्ति-दान-यज्ञ का दान-पत्र

पूज्य विनोबाजी ने भारतीय परम्परा के अनुसार आर्थिक क्रान्ति की अहिंसक प्रक्रिया को सम्पूर्ण रूप देने की दृष्टि से लोगों से भूमि के अलावा अपनी सम्पत्ति की आय का छठा हिस्सा देते रहने की माँग की है। भूमि न होने के कारण जो लोग भूमिदान-यज्ञ में हिस्सा नहीं ले सकते थे, उनके लिए भी अब इस पवित्र काम में शामिल होने का रास्ता खुल गया है। दरिद्रनारायण की सेवा के लिए किये गये उनके आवाहन पर मैं सम्पत्तिदान-यज्ञ में शरीक होता हूँ। मैं सम्पत्तिदान-यज्ञ की योजना के अनुसार उसमें अपना हिस्सा अर्पण कर उसका विनियोग करता रहूँगा तथा उसके खर्च का वार्षिक हिसाब जिले के सर्वोदय-कार्यालय को या सर्व-सेवा-संघ को भेजता रहूँगा।

अपने इस संकल्प का अन्तर्यामी रूप में मैं ही साक्षी हूँ और अपनी अन्तरात्मा से वफादार रहूँगा। ईश्वर मुझे बल दे।

मेरी वर्तमान आय/व्यय का अन्दाज मासिक/वार्षिक

फिलहाल हिस्से का परिमाण आय/व्यय का हिस्सा ————— वाँ

तारीख.................   ....
हस्ताक्षर

पूरा नाम और पता ————————————
————————————
————————————
————————————

[सूचना : दान-पत्र भरकर जिले के सर्वोदय-कार्यालय में या सर्व-सेवा-संघ, पो० खादीग्राम, जिला मुँगेर (बिहार) को भेजा जाना चाहिए।]

[दान-पत्र के पीछे दी जानेवाली सूचनाएँ सामने के पृष्ठ पर देखिये।]

सम्पत्तिदान सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ

(१) **आय :** सम्पत्तिदान-यज्ञ में आय से आशय है—इन्कमटैक्स जैसे अनिवार्य खर्च बाद होने पर सब जरियों से होनेवाली कुल आमदनी।

(२) **विनियोग :** सम्पत्तिदान की रकम का विनियोग नीचे लिखे अनुसार दाता खुद ही कर सकता है। पर हर साल एक बार उसका हिसाब अपने जिले के सर्वोदय-कार्यालय या सर्व-सेवा-संघ को भेज देना चाहिए। दाता की जरूरत हो, तो जिला सर्वोदय-कार्यालय या सर्व-सेवा-संघ से विनियोग के बारे में उनको मार्ग-दर्शन मिल सकता है। दाता चाहें, तो सम्पत्ति-दान की रकम जिला सर्वोदय-कार्यालय या सर्व-सेवा-संघ को विनियोग के लिए सौंप सकता है। सम्पत्तिदान की रकम खर्च करने के बारे में पूज्य विनोबाजी की सलाह के अनुसार सर्व-सेवा-संघ ने नीचे लिखा निर्णय किया है।

सम्पत्तिदान की रकम का विनियोग भूदान-यज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान, अहिंसात्मक क्रान्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाय। उदाहरण के लिए कुछ मदें नीचे दी जाती हैं, जिनमें से किसी एक या अधिक में सम्पत्ति-दान का उपयोग किया जा सकता है :

(१) भूदान-यज्ञ में जिन भूमिहीनों को जमीन दी जाय, उनको साधन-सामग्री मुहय्या करने तथा प्राप्त हुई जमीन को तैयार करने में।

(२) भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सिलसिले में होनेवाले खर्च के लिए।

(३) सर्वोदय-साहित्य के प्रचार में मदद।

(४) विद्यार्थी-वर्ग या मजदूर-वर्ग में छोटे-छोटे दान-दाता अपनी परिस्थिति के अनुसार भूदान-यज्ञमूलक क्रान्ति को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से मिल-जुलकर या अलग-अलग अन्य कामों में भी खर्च कर सकते हैं। इस मामले में वे अपने जिले के "जिला-सेवक" की सलाह ले सकते हैं।

(५) सम्पत्तिदान-दाता अपने सम्पत्तिदान की रकम में से एक-तिहाई रकम स्वेच्छा से अन्य सार्वजनिक हित के कामों में खर्च कर सकते हैं।

नोट : साहित्य के प्रचार के बारे में साहित्य मुफ्त बाँटने की पद्धति न रहे, पर यह कम कीमत में बेचा जा सकता है। किसी वर्गविशेष, विद्यार्थी या कार्यकर्ता आदि को अधिक रिआयत दी जा सकती है। सार्वजनिक पुस्तकालयों, वाचनालयों को मुफ्त भी दिया जा सकता है।

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

(विनोबा)

गीता-प्रवचन	१)
शिक्षण-विचार	१।।)
कार्यकर्ता-पाथेय	।।)
त्रिवेणी	।।)
विनोबा-प्रवचन (संकलन)	।।।)
भगवान् के दरबार में	=)
साहित्यिकों से	।।)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
पाटलिपुत्र में	।–)
सर्वोदय के आधार	।)
एक बनो और नेक बनो	=)
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	=)
भूदान-गंगा (भाग पहला)	१।।)
भूदान-गंगा (भाग दूसरा)	१।।)
भूदान-गंगा (भाग तीसरा)	१।।)
जन-क्रांति की दिशा में	।)
हिंसा का मुकाबला	≡)
व्यापारियों का आवाहन	=)
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	।।।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासन-मुक्त समाज की ओर	।=)
नयी तालीम	।।)
ग्रामराज	।)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

संपत्तिदान-यज्ञ	।।)
व्यवहार-शुद्धि	।=)

(दादा धर्माधिकारी)

मानवीय क्रान्ति	।)
साम्ययोग की राह पर	।)
क्रान्ति का अगला कदम	।)

(अन्य लेखक)

सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
श्रमदान	।)
विनोबा के साथ	१)
पावन-प्रसंग	।।)
भूदान-आरोहण	।।)
राज्यव्यवस्था : सर्वोदय-दृष्टि से	१।।)
गोसेवा की विचारधारा	।।)
गाँव का गोकुल	।)
भूदान-दीपिका	=)
साम्ययोग का रेखाचित्र	=)
धरती के गीत	–)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१)
छात्रों के बीच	।)
सामाजिक क्रांति और भूदान	।–)
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन	।।)
राजनीति से लोकनीति की ओर	।।)
सर्वोदय पद-यात्रा	१)
क्रांति की राह पर	१)
क्रांति की ओर	१)
सर्वोदय भजनावलि	।)
भूमि-क्रांति की महानदी	।।।)
सत्संग	।।)
सुन्दरपुर की पाठशाला	।।।)
ब्याज-बट्टा	।)
पावन-प्रकाश (नाटक)	।)
नक्षत्रों की छाया में	१।।)
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१)
ग्रामशाला : ग्रामज्ञान	१)
क्रांति की पुकार	≡)
पूर्व-बुनियादी	।।)
भूदान-लहरी	–)

हम देख चुके कि धन का ... का परिश्रम प्राप्त करने पर निर्भर है ... मिल सके, तो पैसे की जरूरत नहीं ... लोगों की मेहनत मिल सकती है ... बल अधिक काम करता है। जहाँ ध... सद्गुण काम देता है।

यदि हम मान लें कि आद... शक्ति ही धन है, तो हम यह भी ... आदमी जिस परिमाण में चतुर और ... होंगे, उसी परिमाण में दौलत बढ़ेगी। इस तरह विचार करने पर हमें मालूम होगा कि सच्ची दौलत सोना-चाँदी नहीं, बल्कि स्वयं मनुष्य ही है। धन की खोज धरती के भीतर नहीं, मनुष्य के हृदय में ही करनी है।

—गांधीजी

आठ आना